प्रथम अध्याय

"आचार्य चतुरसेन शास्त्री का व्यक्तित्व एवं कृतित्व"

जन्म - शिक्षा

कृतित्व - उपन्यास ,कहानी, गद्‍य - काव्य

हिंदी कहानी के इतिहास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री का स्थान

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने हिन्दी की लगभग सभी विधाओं में साहित्य की रचना की है। आचार्य जी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, आयुर्वेद, गद्य-काव्य, कहानियाँ, बाल कहानियाँ, उपन्यास इत्यादि सभी विषयों पर स्वच्छन्दता पूर्वक लेखनी चलायी। आत्म-सम्मान इनके स्वभाव की एक प्रमुख वृत्ति थी। ये अपने आत्म-सम्मान को आहत होते किसी भी कीमत पर नहीं देख सकते थे। समालोचकों ने तो उन्हें एक अलग दृष्टि से ही देखा तथा उनकी कहानियों और उपन्यासों में कुछ न कुछ कमियाँ कहीं न कहीं से जरूर उजागर की।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी वास्तव में जिस सम्मान को पाना चाहते थे, वह उन्हें कभी मिला ही नहीं। उनके अपने इष्ट मित्र व साथी साहित्यकार ही उन्हें सम्मान से वंचित रखना चाहते थे। आचार्य चतुरसेन जी स्वयं अपनी इस बात की पुष्टि करते हुए अपनी कहानी संग्रह 'बाहर भीतर' के 'अपनी कहानियों के सम्बन्ध' शीर्षक में कहते हैं कि-"शूरवीर समालोचकों ने एक प्रकार से मेरा बायकाट सा ही कर रखा है। लुत्फ यह है कि न तो ये समालोचक कहानियाँ पढ़ते हैं, न पढ़ना जानते हैं। मैं एक ढीठ लेखक हूँ और इन समालोचकों की योग्यता से खूब वाकिफ हूँ। अतः मैं इनकी ओर आँख उठाकर देखता तक नहीं। न इनकी राय का कानी-कौड़ी के बराबर मैं परवाह करता हूँ।"[1]

इन्होंने अपने जीवन में अनेक प्रकार की चुनौतियों तथा समस्याओं का सामना करते हुए समाज में अपनी लोकप्रियता बढ़ाने और आत्म सम्मान को उच्च शिखर तक पहुँचाने का हर सम्भव प्रयास किया। कहते हैं कि एक बार इनकी एक कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' को कुछ समालोचक पुंगवों ने तो यहाँ तक कह दिया कि यह कहानी चोरी का माल है, और उन पर मुकदमा भी किया था कि इन्होंने कहानी के मूल अंग को अंग-भंग कर दिया है। जिसका जिक्र वे अपनी कहानी 'दुःखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' में करते हैं। "तब एक बवंडर यह भी उठा था कि यह कहानी चोरी का माल है। किसी ने उसे गुजराती से, किसी ने मराठी से और किसी ने उर्दू से चुराई हुई बताया था। तब आचार्य ने इन समालोचक पुंगवों को एक संक्षिप्त उत्तर दिया था कि चोरी के जुर्म में वे सूली पर चढ़ने को तैयार हैं, बशर्ते कि ये समालोचक गण उनकी विधवा कलम का पाणि-ग्रहण करने को तैयार हों। अयोग्य समालोचकों के मुँह पर यह करारा तमाचा था। तभी से यह कहानी बहुत प्रसिद्ध हो गई।"[2]

आचार्य जी ने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में एक भी मित्र नहीं बनाया और वे खुद को एक अपराजित योद्धा ही समझते थे। उन्होंने इस संघर्षमय जीवन के कई मोड़ देखे थे। आचार्य जी किस आर्थिक तंगी में अपनी शिक्षा तथा घर का खर्च वहन किया था, इसका उनकी आत्मकथा

'मेरी आत्मकहानी' में क्रमानुसार वर्णन मिलता है परन्तु इन सबकी परवाह न करते हुए शास्त्री जी ने विपरीत परिस्थितियों में भी कठिन परिश्रम के साथ- साथ अपना लेखन कार्य निरन्तर जारी रखा। आचार्य जी अपनी आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' में कहते हैं कि हमने अपने जीवन में बहुत कुछ खोया है, परन्तु उसके फलस्वरूप मुझे कुछ भी हासिल न हुआ तथा अपनी दशा उस मुसाफिर की तरह बताते हैं जो राह पर चलते-चलते बिल्कुल थक चुका है। उनका कहना है कि -"मेरी दशा उस मुसाफिर के समान है, जो दिन-भर निरन्तर मंजिल काटता रहा हो, और अब निर्जन राह ही में सूर्य अस्त हो गया हो, वह बेसरों सामान थक कर राह के एक वृक्ष के सहारे रात काटने पड़ गया हो और मंजिलों दूर अपने घर में बिछी सुखद दुग्ध फेन सम शय्या की संध्या की भाँति स्निग्धा पत्नी की, और फूल के समान सुन्दर अपने पुत्र की केवल कल्पना मात्र कर रहा हो।"[3]

जन्म-शिक्षा -

हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार एवं उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन जी के जन्म के सम्बन्ध में सटीक जानकारी उन्हीं के द्वारा लिखी गयी आत्मकथा 'मेरी आत्म कहानी' में मिलती है। "उत्तर प्रदेश के बुलन्द शहर प्रान्त में, गंगातट पर स्थित अनूप शहर के निकट चान्दौख ग्राम में एक क्षत्रिय परिवार के साधारण से कच्चे घर में, संवत 1948 भाद्र पद

कृष्णा, चतुर्थी रविवार (26 अगस्त सन् 1891) के दिन गोधूलिबेला में जन्म हुआ था। यह घर और यह ग्राम उनका पुश्तैनी निवास न था, अस्थायी, प्रवास का स्थान था। स्थायी पैतृक स्थान इसी चान्दौख ग्राम के निकट दक्षिण पश्चिम कोई 3- 4 कोस पर 'बिबियाना' ग्राम है।"[4]

अपने जन्म स्थान तथा चान्दौख के अपने घर के विषय में वे कहते हैं कि "चान्दौख मैंने अपने होश हवास में देखा नहीं है। न उस घर को पहचान सकता हूँ, जिसमें मेरा नाल गढ़ा है। बिबियाना मैंने बालकाल में देखा है, वहाँ के टूटे-फूटे घर का भी मुझे ध्यान है। वहाँ हमारा पैतृक शिवालय, बाग और तालाब भी है। वह भी मैंने देखा है। अब भी मेरे परिजन-कौटुम्बिक एक- दो वहाँ रहते हैं ऐसा सुनता हूँ, पर वे मुझे जानते नहीं हैं और मैं भी उन्हें नहीं पहचानता हूँ। सुना था कि चान्दौख में मेरे पिता श्री बहुत कम रहे, परन्तु उनके जीवन में चान्दौख के निवास का सांस्कृतिक प्रभाव बहुत रहा।"[5]

आचार्य चतुरसेन के पिताजी का नाम 'केवलराम वर्मा' तथा माता का नाम 'नन्हीं देवी' था। शास्त्री जी कुल चार भाई थे (1) चतुरसेन (2) खेमचन्द्र (3) भद्रसेन (4) चन्द्रसेन और दो बहनें कलावती और सौभाग्यवती थीं।

इन चारों भाइयों में शास्त्री जी सबसे बड़े तथा कुशाग्र बुद्धि वाले थे। इनके पिताजी बहुत कम पढ़े-लिखे थे और आर्य समाजी-सुधारक थे।

वे आर्य समाजी सुधारवादी आन्दोलन से ही प्रभावित न थे बल्कि कट्टर सुधारक थे। चतुरसेन के पिताजी अत्यन्त गरीब घर के थे और वे एक छोटी सी सर्राफे की दुकान खोलकर साधारण सा धन्धा करते थे जिससे उनका तथा उनके परिवार का पेट पलता था तथा शास्त्री जी की पढ़ाई और कमरे के किराये का खर्च चलता था। इनके पिता केवलराम वर्मा के एक घनिष्ठ मित्र थे जो कि वैद्यराज 'होमनिधि शर्मा' के नाम से विख्यात थे, उन्होंने इनके बचपन का नाम चतुर्भुज रखा था, जो बाद में चतुरसेन के नाम से प्रसिद्ध हो गये। बाल्यकाल में होमनिधि शर्मा तथा परिवार वाले इन्हें 'कुलदीपक' कहकर भी बुलाया करते थे।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जाति के क्षत्रिय थे। क्षत्रियों वाले गुण उनके स्वभाव तथा कार्य शैली में नैसर्गिक रूप से आ ही गये थे। निर्भीकता और विद्रोह उनके व्यक्तित्व के सबसे अहम गुण विरासत में उन्हें प्राप्त हुए थे। शास्त्री जी के द्वारा ही संपादित 'चाँद' पत्रिका (मासिक) के दो विशेषांक क्रमशः 'फाँसी अंक' और' मारवाड़ी अंक' की विशेष सामग्री आचार्य जी के ही विद्रोहपूर्ण और उनकी परम निर्भीकता का फल है। आचार्य चतुरसेन की माता जी त्याग, ममता तथा श्रद्धा की प्रतिमूर्ति थी। शास्त्री जी उन्हें प्यार से हमेशा अम्मा कहकर ही बुलाते थे और माता इनको 'भैया' कहतीं। हमेशा तुम कहकर बोलतीं। आचार्य जी अपनी माता जी के त्याग और ममता के विषय में कहते हैं कि -"माता

जी ममता की प्रति मूर्ति थीं। त्याग-स्नेह और सहिष्णुता को मिलाकर जो एक श्रद्धा और आदर्श की देवी की कल्पना की जा सकती है, वही वे थीं। वे पढ़ी लिखी नहीं थीं। पर वे असल हीरे की कनी थीं। प्रकृति ने उन्हें जो लोकोत्तर आभा दी थी, उस पर कृत्रिम चमक करने का किसी कारीगर को अवसर ही नहीं मिला।"[6]

शास्त्री जी अपने माता- पिता की अवस्था तथा उनके शरीर के कुछ भागों की अपने से समानता दिखाते हुए कहते हैं कि -"जब मेरा जन्म हुआ तब पिताजी की आयु 21 वर्ष और माताजी की आयु सोलह वर्ष की होगी। पिताजी का शरीर लोहे का था, माताजी का भी वैसा ही था। अपने जीवन के अन्तिम समय में वे निरन्तर सोलह वर्ष रोग- शय्या पर रहीं, फिर भी नित्य के बहुत काम निपटाती रहीं और 68 वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने इह लीला समाप्त की, तो उनका एक भी बाल सफेद न था। मैं भी आज 65 को पार कर रहा हूँ - बाल मेरे भी सब स्याह हैं। दांत भी वैसे हैं जैसे 30 वर्ष पूर्व थे।"[7]

आचार्य चतुरसेन के व्यक्तित्व के बारे में इनके छोटे भाई चन्द्रसेन जी के शब्दों में- "मुझसे बड़े दो भाई और थे, उन्होंने आगे बढ़कर प्रणाम किया, परन्तु मैं माता के पीछे ही छिपकर उन 'वैद्य जी' की भव्य देवतुल्य आकृति को देखकर लजा रहा था। सफेद पाजामा, सफेद कोट, नंगा सिर, आँखों पर सनुहरी फ्रेम का चश्मा, धवल दन्त- पंक्तियों

में उन्मुक्त हास्य, प्रशस्त माथा और गोल भरा हुआ रुआबदार रक्तवर्ण चेहरा"। [8]

आचार्य चतुरसेन जी का प्रथम विवाह सन् 1912 ई. में अजमेर के औषधालय के प्रधान वैद्य श्री 'कल्याण सिंह' जी की पुत्री के साथ हुआ। जिसका नाम 'तारा देवी' था। तारा देवी ने संस्कृत और हिन्दी में' भवानी प्रसाद गुप्त' के संरक्षण में उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी। अपनी शादी के विषय में आचार्य जी स्वयं अपनी आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' में कहते है कि "मेरा विवाह विशुद्ध वैदिक आडम्बरहीन रीतियों से 28 अप्रैल 1912 ई. में मुहम्मदपुर देवमल (जिला बिजनौर) में सम्पन्न हुआ। उस समय मेरी उम्र 21 वर्ष और मेरी पत्नी तारा देवी की 17 वर्ष थी। ग्राम स्कूल की चौथी कक्षा पास करने के उपरान्त वह अपने पिता जी के पास अजमेर चली आई थी और विवाह के समय तक उसने हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत में भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी। जिसका श्रेय भवानी प्रसाद गुप्त को था।"[9]

शास्त्री जी विवाह के सम्बन्ध में कहते हैं कि-"मेरा विवाह एक सांस्कृतिक समारोह के समान था और उन दिनों एक विवाह उत्सव का सांस्कृतिक समारोह रूप ग्रहण कर लेना बड़ी भारी कौतूहल की बात थी।[10]

आचार्य जी की पहली पत्नी श्रीमती तारा देवी की मृत्यु अल्पायु में ही सन् 1923 ई. में हो गई, जिससे शास्त्री जी के ऊपर दुखों का पहाड़

सा टूट पड़ा। कुछ वर्ष पश्चात मध्य प्रदेश के निवासी श्री 'नानूराम जौहरी' की सुपुत्री 'प्रियम्वदा देवी' के साथ इनका दूसरा विवाह हुआ। वे अपनी प्रथम पत्नी तारा देवी को बहुत अधिक स्नेह करते थे। उसकी मृत्यु का घाव इतना गहरा हो गया था कि उनकी मानसिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी और वे अपनी पहली पत्नी के प्रति लिखते हैं कि "मेरी प्रथम पत्नी और मैं दोनों ऐसे दम्पत्ति थे, जो पूर्णार्थ में परस्पर तृप्त थे। जिस प्रकार अनुकूल ऋतु और जलवायु पाकर पौधा पनपता है, उसी भांति अनुकूल प्रकृति, स्वभाव और भावना से दोनों के शरीर और आत्मा घुलमिलकर एक हो गये थे। प्यार वहाँ सफल था। परन्तु अब तो बात भिन्न थी। पहली पत्नी का शरीर तो नष्ट हो गया था। अब मेरे साथ केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध ही रह गया था"[11]

शास्त्री जी भावुक तथा अत्यन्त संवेदन शील व्यक्ति थे। अपनी पत्नी की मृत्यु से वे एकदम टूट गये थे। आन्तरिक संघर्ष के एक उदगार में उनकी भावुकता का परिचय हमें मिलता है -"परन्तु पत्नी की जगह, कहना चाहिए पूर्व पत्नी के पार्थिव प्यार के सिंहासन पर द्वितीय पत्नी आ बैठी। मेरी आत्मा ने उसका विरोध किया। मैं सोचने लगा कि कोई भी स्त्री क्या पूर्व पत्नी के अधिकार को लेगी। मैं इसी विद्रोह के प्रभाव में, मानसिक रोग से आक्रान्त हुआ था। पर धीरे-धीरे मैं सोचने लगा कि द्वितीय पत्नी केवल कोई स्त्री ही नहीं मेरी पत्नी है।"[12]

इस प्रकार से शास्त्री जी अपने को संभालते हुए जैसे ही कुछ सहज महसूस किये थे, कि नियति ने अपना खेल एक बार फिर खेला और दुर्भाग्य वश 1933 ई. में सिर्फ चार दिन की बीमारी में इनकी दूसरी पत्नी भी चल बसीं।

पुनः तीन वर्ष पश्चात इनका तृतीय विवाह 'ज्ञान देवी' के साथ हुआ। ये चतुरसेन के एकांगी जीवन में अमृत रस बनकर आईं पर कुछ समय पश्चात ज्ञानदेवी की भी मृत्यु हो गयी। सन् 1945 ई. में इनकी तीसरी पत्नी ज्ञानदेवी की बहन 'कमल किशोरी' से चौथा विवाह हुआ। पर इस विवाह से चतुरसेन जी बिल्कुल खुश नहीं थे, क्योंकि वह युवती थी और आचार्य जी प्रौढ़, परन्तु कमल किशोरी की त्याग, निष्ठा, स्नेह इत्यादि गुणों ने उनके जीवन में एक गुल खिलाने का प्रयास किया जो खिला भी।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की एक मात्र पुत्री 'ज्योति' थी, जिसका जन्म 29 सितम्बर सन् 1955 ई. को हुआ, जब आचार्य जी 64 वर्ष के थे। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने स्वतः अपनी आत्मकहानी में यह बात लिखी है कि "29 सितम्बर सन् 1955 ई. को जब वह दिव्य ज्योति कन्या का रूप धारण कर मेरे घर जन्मी तो मैं सोचता ही रह गया कि मुझ संततिहीन, मित्र, बन्धु, बान्धव, सगे-सम्बन्धियों से हीन एक दैवी शापग्रस्त व्यक्ति को जो 64 वर्ष की देहरी

पर पहुँच कर अपनी संध्या की ओर उन्मुख हो रहा है, ईश्वर एक शिशु के पिता बनने का गौरव भी प्रदान कर सकते हैं। मेरे लिये यह दैवी चमत्कार था।"[13]

शिक्षा -

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी का बचपन का नाम चतुर्भुज था। उनका विद्यालयी जीवन मनोरंजक एवं ज्ञानप्रद था। इनके पिताजी उसी समय चान्दौख से सिकन्दराबाद में आकर बस गये और वहीं पर अपने आर्य समाजी तथा समाजसुधारक कार्य में लग गये। चतुर्भुज की प्रारम्भिक शिक्षा की शुरुआत जिनके पुण्य प्रताप से हुआ था, उनके उन गुरु का नाम 'गंगा राम' था। उस समय उनके पिता जी 2 या 4 आना विद्यालय की फीस देते थे। तथा 'सीधा-पिसान' चतुर्भुज जी अपनी माता जी से लड़- झगड़ कर ले जाते थे। जिस समय यह पढ़ते थे, उस समय पाठशालाओं में शिक्षा के लिये जमीन पर ही बैठना होता था तथा लिखने के लिये 'सरकण्डे' की कलम का उपयोग होता था। आचार्य चतुरसेन जी अपने विद्यालयी जीवन के बारे में 'अपनी आत्मकहानी' में लिखते हैं कि- "जिस दिन मेरा अक्षराभ्यास हुआ और मैं पहली बार पाठशाला में गया, वह दिन भी मुझे अच्छी तरह याद है। सुना था कि पण्डित जी मारते हैं, कान खींचते हैं, और मुर्गा बनाते हैं। एकाध बार दूर खड़े होकर मुर्गा बनते तथा पिटाई होते मैंने लड़कों को देखा भी था। माता-पिता ने मेरी

पिटाई कभी की नहीं, मुझे याद ही नहीं कि कभी की हो। मैं पिटाई से घबड़ाता बहुत था। पाठशाला में दूर से किसी किसी बालक की पिटाई होते देखता तो रोते हुए घर भाग आता। और माता की गोद में मुँह छिपाकर सुबक-सुबक कर रोने लगता। माता समझतीं- मुझे ही किसी ने मारा है। बहुत देर बाद हिलकियाँ लेते-लेते मैं कहता पण्डित जी अमुक लड़के की पिटाई कर रहे हैं। तब माता मुझे ढाँढ़स देकर चुप करातीं। मेरे हृदय का यह कातर भाव अब भी 65 वर्ष की आयु में वैसा ही है। किसी बालक को पिटते-ठुकते मैं देख नहीं सकता। लज्जा जनक बात हो सकती है, पर सत्य तो यह है कि बालक को रोता देख अब भी मैं रो उठता हूँ।[14]

इस प्रकार हमे मालूम पड़ता है कि शास्त्री जी बचपन से ही अत्यन्त दयालु और दूसरों के प्रति सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति थे, जो अन्त तक वह प्रतिभा सर्वत्र उनकी रचनाओं में रमी हुई दिखाई पड़ती है। ज़रा-ज़रा सी बात पर इनकी आँखों से अश्रु की धारा फूट पड़ती थी। किसी भी व्यक्ति को या घर में ही किसी को तकलीफ में देखकर इनका कोमल हृदय द्रवीभूत हो जाता था। वे अपनी विद्यालयी जीवन की अगली कड़ी को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि- “अब जब मुझे स्वयं पाठशाला जाना पड़ा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ- कि मुझे मेरा सिर काटने को ले जाया जा रहा है। रोता हुआ मैं माँ के आँचल से लिपट गया। माँ ने बारम्बार चुमकारा, पुचकारा लल्लू- भैया कहा, गोद में उठाया, मिठाई

खिलाई, पिताजी ने भी फुसलाया और मुझे पाठशाला जाना ही पड़ा। उस दिन मुझे नया कुर्ता मिला, नई धोती मिली, नई टोपी, जिनमें गोटा लगा हुआ था। यह मुझे खूब अच्छी तरह याद है। उन दिनों मैं अपने हाथों में चांदी के कड़े पहने रहता था। याद आता है कमर में करधनी भी पहनता था, लेकिन पैर में जूता नहीं था। जूता तो बहुत दिन बाद सिकन्दराबाद में ही आकर पहना। धोती बाँधना मैं नहीं जानता था। उस दिन पिताजी ने मेरी धोती बाँधी थी और वे कंधे पर चढ़ाकर मुझे पाठशाला ले गये थे।"[15]

फिर कुछ समय पश्चात शास्त्री जी को पाठशाला में जाने के लिये वह सहारा भी नहीं मिला अर्थात् पिताजी अब उनको कंधे पर बिठाकर ले जाना और ले आना बन्द कर दिये थे। अब इन्हें खुद अकेले जाना पड़ता और वापस आना पड़ता था। काफी दिनों तक विद्याध्ययन करने के उपरान्त भी उन्होंने केवल छः (6) अक्षर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ) भी नहीं सीख पाये और जब सीखे तो पूरा का पूरा (16) सोलह स्वर। इसका मुख्य कारण था, डण्डे की मार का डर, क्योंकि उस दिन की घटना ने उन्हें पढ़ना लिखना सिखा दिया था।

उस घटना का जिक्र करते हुए शास्त्री जी "मेरी आत्मकहानी" में लिखते हैं कि-"हर बार जब वे कहते- लिख, तब हर बार मेरा एक ही जवाब था, पिताजी लिखेंगे। अन्त में पण्डित जी अधीर हो उठे और अपने

मस्तिष्क का संतुलन खो बैठे। उन्होंने क्रोध से लाल-लाल आँख करके लड़कों को ललकारा- कोई है, लाओ तो खजूर की कम्मच, आज मैं इस चतुर्भुज के बच्चे की खाल उधेड़ूँगा। और पाँच-सात बालक दौड़ चले खजूर की कम्मच लेने। खजूर की कम्मच की करामात दो चार बार मैं देख चुका था। बस मेरी गाड़ी दौड़ चली, और जब तक कम्मच आई मेरी तख्ती भर चुकी थी। टेढ़े-मेढ़े अक्षर, काँपते हाथ, आँसू भरी दृष्टि और हिचकियों से भरपूर रुदन सहित अटक-अटक कर उन अक्षरों का अस्फुट उच्चारण। पण्डित जी ने शाबाशी दी, पीठ ठोंकी, पुचकारा, गोद में उठाया, मगर इस लाड़-प्यार से भी मेरा रोना तो रुका नहीं। पण्डित जी उस दिन स्वयं मुझे लाकर घर छोड़ गये। पिताजी को तख्ती दिखाई, बधाइयाँ दीं। इस प्रकार मेरा अक्षराभ्यास आरम्भ हुआ।"[16]

एक बार की बात है चतुर्भुज (शास्त्री जी) का एक मित्र था भूरा, जो उन्हीं के गाँव में ही रहता था। भूरा और चतुर्भुज दोनों एक ही पाठशाला में पढ़ाई करते थे, परन्तु भूरा चोर था और वह नित्य एक हलवाई के गल्ले से पैसा ऐंठा करता। धीरे-धीरे साथ रहते-रहते चतुर्भुज को भी आदत पड़ गयी। एक दिन वे भी हलवाई के पास भूरा सिंह के साथ गये, और वहाँ पर पैसा देकर कुछ सामान देने को दुकानदार से कहा। जैसे ही दुकानदार पीछे मुड़ा शास्त्री जी अपने मित्र भूरा की भाँति उसके गल्ले में हाथ डालने लगे तो वहाँ गल्ले की टोकरी उलट गई और

आवाज होने से दुकानदार ने उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें उनके पिताजी के पास शिकायत करने ले गया। और कहा -

"महाशय जी, लड़के को तो खूब अच्छी कमाई करनी सिखाई है। और सब हाल कह दिया। यह भी कहा- ये दोनों कई दिन से आते थे न जाने कितना पैसा चुराया है। सुनकर पिताजी कुछ क्षण मौन रहे। फिर बोले लाला, तुम्हारा कितना नुकसान हुआ होगा ? उसने कहा अजी मैं नुकसान की कब कह रहा हूँ, लौंडे को सम्भालो, उस बदमाश की सोहबत से हटाओ।"[17]

शास्त्री जी के कस्बे में एक मात्र सरकारी स्कूल था और उस स्कूल के हेडमास्टर थे 'बालक राम' वह केवल मैट्रिक तक की शिक्षा ग्रहण किये थे, लेकिन आज के डबल एम.ए. पास से अधिक ज्ञान था। वे अक्सर हमारे पिताजी की दुकान के सामने से होकर गुजरते और आते-जाते नमस्ते भी किया करते थे। एक दिन हमें तख्ती लेकर वहीं दुकान पर ही लिखते देखा तो उनके अन्दर एक प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वे पिता जी से पूछ बैठे कि ये बालक आपका है? पिताजी ने हाँ में सिर हिला दिया। फिर मेरी तख्ती पर लिखे शब्दों को देखते हुए बोले- बेटा, तुम तो बहुत ही अच्छा लिखते हो? किस स्कूल में पढ़ते हो? पिता जी ने बताया कि यह बनियों की चटशाला में पढ़ने जाता था, परन्तु वहाँ का माहौल इसके लायक नहीं था, इसलिये बन्द करवा दिया। हेड मास्टर ने

मेरी प्रशंसा करते हुए कहा कि इसे मेरे स्कूल में भेजो मैं इसे पढ़ाऊँगा, देख लेना यह बालक एक दिन बहुत उन्नति करेगा।

फिर अगले ही दिन सरकारी स्कूल में मेरा दाखिला हो गया और वहाँ पर मैं सन् 1907 तक निरन्तर अध्ययन करता रहा। हालाँकि मेरी चोरी वाली कुकृत्य से मेरे पिताजी को बहुत ही आघात पहुँचा था, इसलिये स्कूल में प्रवेश लेने के एक महीने के भीतर ही आर्य समाजी पण्डितों के नेतृत्व में मेरा यज्ञोपवीत करा दिया गया और मुझसे भविष्य में शुद्ध आचरण एवं सत्य मार्ग पर चलने के लिये प्रतिज्ञा करवायी गयी। इन प्रतिज्ञाओं की साक्षी यज्ञ की अग्नि को मानकर किया गया।

शास्त्री जी जब 6 -7 वर्ष के बालक थे तभी इनके पिता केवल राम वर्मा ने इन्हें कुछ भाषण देना तथा कुछ कविताएँ और कुछ मन्त्र, चौपाईयाँ रटवा दी थीं। सन् 1907 में ये सिकन्दराबाद के गुरुकुल में प्रविष्ट हुए और तत्पश्चात अपने किसी मित्र के साथ काशी के एक बगीचे में पहुँच गये, जहाँ कुछ विद्यार्थी रहते थे। वहाँ पर एक दिन खाने को लेकर आपस में मतभेद हो गया और शास्त्री जी वहाँ से दशास्वमेध घाट पर पहुँचे और वहाँ के रहन-सहन तथा अपनी विद्या ग्रहण करने के विषय में कहते हैं कि-

"दशास्वमेध घाट पर प्रातः काल स्नान करके तिलक लगाकर बैठते रहे। वहाँ कोई न कोई यात्री भोजन करा देता। जिस बगीचे में हम लोग

ठहरे थे उसके मालिक ने मेरा सस्वर गंगालहरी के सूत्रों का गान सुन और उससे प्रभावित होकर अपने घर पर कथा करने के लिये बुलाया। इस प्रकार 5-6 दिन भोजन मिला। इसके बाद उन्होंने अपने बगीचे में ठहरे हुए विद्यार्थियों का निरीक्षक नियत कर दिया तथा ठहरने और भोजन की व्यवस्था कर दी। कपड़े भी इसी प्रकार पहनने को मिल जाते थे। मैं भिन्न-भिन्न गुरुओं के पास घूम-घूम कर भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन करने लगा।"[18] इसी कड़ी में वे आगे अपने विषय में बताते हुए कहते हैं कि -

"प्रत्येक प्रति-पदा और पूर्ण मासी को (उस दिन अनाध्याय) रहता था। हम बाजारों में निकल पड़ते और अच्छी तरह किसी मोटे आसामी को भाँपकर उसे देवदर्शन कराने के लिये ले चलते। गली कूचे में जहाँ आला दिवाला दीखता, एक कथा गढ़कर यात्री को बता देते और पैसा चढ़वाते। मेरा साथी पीछे-पीछे आता और चढ़ावे का धन उठाता जाता। इस प्रकार कुछ एकत्र हो जाते, कुछ दक्षिणा मिलती। पुस्तकें खरीदने का तथा भोजन का खर्च निकल आता। ऐसा करने में गुण्डों और पण्डों से भी झगड़े हो जाते थे। अब हमने क्षेत्रों का भोजन त्याग दिया था। हम आठ दिन के लिये मोटी- मोटी रोटी बनाकर अंगोछे में बाँधकर छाया में टाँग देते। नित्य प्रायः गंगा स्नान कर एक रोटी खा दिन भर घूम-घूम पढ़ते।"[19]

काशी में विद्याध्ययन के समय ही इनका पहला नवरात्र का व्रत प्रारम्भ हुआ और यह व्रत शास्त्री जी ने लगभग 20 वर्षों तक नियमित किया, क्योंकि उन्हें किसी विद्यार्थी से ही इस व्रत के बारे में जानकारी मिली थी कि -

"इस व्रत को प्रतिवर्ष रखने वाला विद्यार्थी सर्व विद्याओं में पारंगत होकर परम यशस्वी होता है। उसे अप्रतिम तेज और बल की प्राप्ति होती है। उसके लिये कोई कार्य कठिन नहीं होता। उसे रिद्धि-सिद्ध सर्व सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस महिमा से प्रभावित होकर मैंने नवरात्र का व्रत रखना आरम्भ कर दिया।"[20]

आचार्य चतुरसेन जी को नवरात्र का व्रत रखने से ज्ञान और क्षात्र तेज की प्राप्ति हुई। उन्होंने इस व्रत को मूर्ति पूजा न समझकर के इसे शक्ति की उपासना समझा। आगे वे अपनी शिक्षा के सम्बन्ध में कहते हैं कि- "इस प्रकार काशी में लगभग 16 मास मैंने डॉ. केशवदेव शास्त्री तथा अन्य विद्वानों और पण्डितों से वेद शास्त्र एवं संस्कृत ग्रंथों को पढ़ा। वहाँ की तत्कालीन संस्कृत शिक्षा-प्रणाली में समय का दुरुपयोग होते देख और एक सुयोग उपस्थित होने पर सन् 1909 के अन्त में 19 वर्ष की आयु में जयपुर में वहाँ के प्रसिद्ध संस्कृत कालेज में पढ़ने चला गया। मेरा साथी वहीं काशी में रह गया। कालेज में प्रविष्ट होकर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित महामहोपाध्याय पं. गंगाधर चतुर्वेदी का अन्तेवासी बना, जहाँ मैं

संस्कृत और वैद्यक पढ़ता था। कालेज में फीस कुछ नहीं देनी होती थी। रहता था आर्य समाज मन्दिर में।"[21]

शास्त्री जी और एक इनके दक्षिणात्य विद्यार्थी दोनों वहीं रहते थे। शास्त्री जी और उनके मित्र दोनों लोग ट्यूशन पढ़ाकर अपना गुजर बसर करते थे। जयपुर में उस समय 'जौ' ही प्रमुख खाद्य था और खाना इनका बनाती थी समाज के चपरासी की औरत। जयपुर में पढ़ाई के दौरान ट्यूशन में शास्त्री जी को तीन रुपये मासिक तथा इनके मित्र को 11 रु. मासिक मिलता था। इनके मित्र चूँकि अंग्रेजी के छात्र थे इसलिये इन्हें ज्यादा फीस मिलती थी। सब्जी, तरकारी बहुत कम खाते थे, क्योंकि इसी पैसे से उनको सभी कार्य करना पड़ता था। इनका जीवन बहुत ही संघर्ष पूर्ण रहा तथा शिक्षा के दौरान अभावों में ही जीते रहे। जैसा कि वे अपनी आत्म कथा 'मेरी आत्मकहानी' में स्वयं बताते हैं कि "एक रुपये का जौ लेकर एक मास चलाते थे। हर महीने की पूर्णमासी को जौ लाने का नियम था। यदि हम देखते कि महीना पूरा नहीं पड़ेगा तो एकादशी, रविवार आदि के दो- चार उपवास कर डालते थे। सब्जी-तरकारी दो चार पैसे की हफ्तों चलती थी, बहुत सस्ती थी। एक पैसे की 10, 12 मूली और 2 पैसे के एक सेर बैंगन। घी शायद पौने दो सेर। पर हम खुदा के बन्दे घी, दूध के फेर में न थे। खाते थे जौ के रुखे टिक्कड़। कभी मिर्च खटाई की चटनी से कभी साग- तरकारी तथा दाल के साथ।"[22]

सन् 1912 ई. में विवाह के उपरान्त शास्त्री जी का विचार सिकन्दराबाद से अलग कहीं स्थायी रूप से अपना औषधालय खोलने का हुआ। इसी विचार से वह पत्नी तथा चन्द्रसेन के साथ दिल्ली चले आये और मालीवाड़े में एक चिकित्सालय खोला। लेकिन यहाँ पर अच्छी तरह से मरीजों की कोई दिलचस्पी न रही। बाद में हताश होकर चिकित्सालय बन्द करके 'कटरा मेदगरान' में आकर नौकरी कर ली और वहीं रहने लगे। कटरा मेदगरान में एक सेठ सांवलदास वैश्य रहते थे। उसी मोहल्ले में उन्होंने एक बहुत बड़ी धर्मशाला भी बनवाई थी। मैंने उन्हें सुझाया कि इस धर्मशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाने की एक पाठशाला और एक धर्मार्थ औषधालय खोला जाय। जिसे उन्होंने स्वीकार किया और दोनों ही संस्था को खोलने का भार मुझे सौंप दिया गया।

इस दौरान शास्त्री जी विवाह से पहले ही आयुर्वेद विशारद परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और नवम्बर 1912 में यह परीक्षा पास करके सांवलदास द्वारा शुरू हुई वैदिक विद्यालय एवं औषधालय को अच्छी प्रकार से मन लगाकर चलाने लगे। वे औषधालय के बारे में कहते हैं कि- "सेठ सांवलदास के धर्मार्थ औषधालय से मुझे वेतन के 25 रु. मासिक मिलते थे। और दिन भर काम करना पड़ता था। सुबह शाम औषधालय में रोगी देखता, दोपहर को पाठशाला में पढ़ाता तथा रात को बही खाता लिखना पड़ता था। इन्हीं 25 रुपयों में से मुझे अपने मकान का किराया

आठ रुपया कटाना पड़ता था। कभी कभी गृहव्यय के लिये मुझे पत्नी के जेवर भी बेचने पड़े। पिताजी की स्थिति भी साधारण थी। और सत्य तो यह है कि अपने जीवन यापन के लिये किसी से सहायता लेने की मेरी प्रवृत्ति थी नहीं, इसलिये जैसी भी व्यवस्था सम्भव होती मैं अपनी गृहस्थी धकेल रहा था।"[23]

आगे शास्त्री जी अपनी आत्मकथा 'मेरी आत्म कहानी' में लिखते हैं कि-"मैं अब शास्त्री परीक्षा देने की भी तैयारी कर रहा था। ऐसे ही करते-करते अप्रैल 1915 में मैंने जयपुर संस्कृत कालेज की आयुर्वेद और संस्कृत शास्त्री की दोनों परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। इसके बाद दिसम्बर 1915 में मैंने आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। विद्यापीठ का मैं सर्वप्रथम आयुर्वेदाचार्य था।"[24]

इनके संस्कृत शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के कारण 'शास्त्री' नाम जुड़ गया। इन्हें शास्त्री जी भी कहा जाने लगा। इसी समय चतुरसेन जी ने अपनी सर्वप्रथम रचना 'हिन्दुओं की छाती पर जहरीली छुरी' विधवा औरतों के विवाह से सम्बन्धित तथा एक और रचना 'शरीर तालिता' शरीर विज्ञान से सम्बन्धित लिखी और उसे स्वयं अनेक प्रकार की कठिनाइयों के बावजूद प्रकाशित किया। इन्हीं सब अन्तर्द्वन्दों के बीच आर्थिक तंगी के कारण नवम्बर 1914 ई. में वे आगरा जा पहुँचे और अपने मित्र 'युद्ध वीरसिंह' से अपनी सारी व्यथा कारुणिक स्वर में कह

दिया कि ”मैं अपने कर्तव्य और धर्म का ठीक-ठीक पालन नहीं कर पा रहा हूँ। मैंने जिस स्त्री का हाथ पकड़ा है उसे न अच्छा भोजन, न नए वस्त्र, न जेवर और न अन्य सुख दे सका हूँ।। मैं दरिद्र का दरिद्र ही अपने संघर्षमय जीवन में दिन काट रहा हूँ। [25]

इतना कहने के उपरान्त शास्त्री जी की आँखों से अश्रुओं की धारा बह चली और उसी क्षण उनके मुख से 'दरिद्र क्रन्दन' की कुछ पंक्तियाँ उच्चारित हुईं।

“सहसहू विधना के लाडिले, सुखद महलन में सुख सों पड़े।।
विगत ज्ञान भये सुख नींद में, फल भोग रहे स्व सुकर्म को।।
सबहिं भोग रहे सुख अमित हो, सुख साज सजे संसार में।।
इकलो मैं ही हत भाग्य हूँ, तरसतो फिर रह्यो एक टूक को।।
सुख सो पूरित संसार में, दुःख ही दुःख देख पड़े मुझे।।
भयदायिनी मूर्ति निराश की, तममयी दिशि व्याप्त लसे अहो।।[26]

इसी समय इनका परिचय नवनीत समाना साधु 'केदारनाथ गोयनका' से भी हुआ। केदारनाथ जी ने आचार्य जी के परामर्श पर सन् 1910 में मारवाड़ी लाइब्रेरी की स्थापना की। पर अन्त में केदारनाथ जी को कपड़े के व्यापार की काफी हानि उठानी पड़ी, जिससे लाइब्रेरी पुनः बन्द हो गयी तब शास्त्री जी को मजबूरन दूसरी जगह जाना पड़ा।

सन् 1917 ई. में इन्हें एक सुयोग मिला। पंजाब युनिवर्सिटी के ’डी. ए. वी.’ कालेज के प्रधानाचार्य के अनुरोध पर ये आयुर्वेद का सीनियर

प्रोफेसर होकर लाहौर चले गये। कुछ महीने तक सब कार्य सुचारु रूप से चलता रहा परन्तु एक दिन इतने सारे कार्यों को देखकर शास्त्री जी का मन टूटने लगा तथा इनके आत्मसम्मान में भी कुछ बात लग गयी, क्योंकि ये थोड़ा अहंकारी स्वभाव के थे। किसी की गुलामी करना इनके वश के बाहर था। वे इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि- "यद्यपि मैं वहाँ आयुर्वेद का सीनियर प्रोफेसर था, मेरा बहुत मान सम्मान था परन्तु किसी की चाकरी मुझसे बजती न थी। अभी एक वर्ष भी नहीं व्यतीत हुआ कि कालेज के अधिकारियों से कालेज नियमों के एक विषय को लेकर खटक हो गई। प्रिंसिपल के कमरे में जाकर हाजिरी के रजिस्टर पर दस्तखत करने पड़ते थे और दो चार मिनट की भी देर होने पर ऐसा मालूम होता था कि प्रिंसिपल सारे अंगों से मुझे देख रहे हैं। मैं अपना पद त्याग कर अपने श्वसुर के पास अजमेर चला गया और वहीं चिकित्सा का कार्य करने लगा।"[27]

इस प्रकार शास्त्री जी अपने वैद्यक पेशे को 'डी.ए.वी.' कालेज से छोड़ने के पश्चात तुरन्त अजमेर में अपने श्वसुर के पास उनके औषधालय में ही अपना एक औषधालय 'कल्याण औषधालय' खोल लिया। शास्त्री जी का इलाज करने का ढंग अलग था। ये वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से मरीजों का उपचार करते थे। इसलिये शीघ्र ही इनका यश फैल गया और ये बहुत प्रसिद्ध हो गये। सन् 1919 ई. में

अपनी छोटी बहन कलावती के अत्यन्त बीमार हो जाने के कारण अजमेर से वापस घर चले आये। परन्तु कलावती की मृत्यु हो गयी। जिसके कारण ये अन्दर ही अन्दर टूट गये। फिर कुछ दिनों पश्चात इन्होंने अपनी पत्नी और भाई भद्रसेन के साथ बम्बई में अपने वैद्यक पेशे को बढ़ाने के लिये किराये पर कमरा लेकर एक औषधालय खोला और उस औषधालय का नाम रखा 'अजमेरवाला वैद्यराज'।

बम्बई में इनके औषधि के प्रयोग से किसी भी प्रकार का मरीज ठीक हो जाता था। ये बड़े बड़े राजाओं और महाराजाओं के घर में भी इलाज करने जाते थे और उनके घर के भेदों को भी भली-भाँति जान लेते थे तथा उसी पर आधारित उनके घर के कच्चे चिट्ठे अपनी लेखनी के द्वारा अपने साहित्य में उतार देते थे। एक बार बम्बई जैसे बड़े शहर में एक रानी साहिबा के घर के भेदों का वर्णन करते हुए कहते है कि "एक तरुणी रानी साहिबा ने तो मुझे अपनी कोठी पर बुलाकर कमरे में बंद कर दिया और कहा, छुट्टी तब मिलेगी, जब मेरी सौंध को अन्धी या पागल कर दोगे।"[28]

"एक श्रीमन्त करोड़पतिने पचीस हजार की गडडी मेरी आँखों के सामने रख दी थी। इसलिये कि मैं उनकी सौतेली माँ को विष दे दूँ। जिसकी चिकित्सा बड़े ही यत्न से उन्होंने मेरे सुपुर्द की थी।"[29]

इनकी औषधियाँ इतनी प्रबल होती थीं कि पुराने से पुराने दर्द, घाव, बीमारी, सूजन कुछ भी हो वह लगभग ठीक हो ही जाती थी। इसीलिये कुछ राजाओं और रानियों ने शास्त्री जी की उस औषधि का गलत उपयोग करना चाहा। जिसके द्वारा जहाँ एक जीव को नया जीवन दान मिलता था, वहीं दूसरी ओर इन लोगों ने मोह- माया में पड़कर अपने ही घर के सदस्यों के प्राण तक लेने चाहे और शास्त्री जी को पैसा देकर यह काम करवाने का असफल प्रयास करते रहे। ”एक राजा साहब ने अपनी पत्नी और पुत्र को ही साफ कराना चाहा था, जिससे वे अपनी उप पत्नी के पुत्र को वैध उत्तराधिकारी बना सकें।"[30]

“एक राजा साहब ने अपने छोटे पुत्र को जो दूसरी रियासत पर गोद गया था उस रियासत का झटपट स्वामी बनने के लिये गोद लेने वाले रुग्ण राजा और उसकी पत्नी को ही साफ कराना चाहा था और इन कामों के लिये कितनी भारी-भारी रकमें पेश की गयीं थी, आप कल्पना भी नहीं कर सकते।”[31]

सन् 1924 की बात है जब उन्होंने व्यवस्थित होकर अपना औषधालय दिल्ली के चांदनी चौक में आरम्भ किया। तब उन्हें अपार खुशी मिली कि अब ठीक तरह से स्थायी रूप से लोगों का इलाज कर सकेंगे। शास्त्री जी को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उन्हें नया जीवन मिला हो, क्योंकि दिल्ली में इनका सिक्का जम गया था और दूर-दूर से मरीज

इनके पास आते थे। वे कहते हैं कि "मुझे ठीक स्मरण है कि अपना काम जमाने के बाद मैं पहले दिन अपनी कुर्सी पर बैठा ही था कि मेरे हाथ में जो प्रथम रोगी आया, वह एक महीने से बेहोश था और उसके अन्तिम श्वास चल रहे थे पर मैंने उन्हें आशा दिलाई और सोलह रुपये फीस के जेब में डालकर अपने औषधालय में लौट आया। बहुत देर तक मैं औषध-देने के विषय में विचार करता रहा। अन्त में मैंने भद्र को कुछ औषध दे और सब व्यवस्था समझाकर रोगी को घर भेज दिया। ईश्वर की कृपा से पहली ही मात्रा ने रोगी को जीवन श्वास प्रदान किया। उसके अर्ध्व श्वास सुधर गये। अगले दिन प्रातः जब मैं रोगी को देखने गया तो गृह स्त्रियाँ मेरे चरणों से लिपट गयीं। वह एक सम्भ्रान्त परिवार का प्राणी था, इसलिये उसके आरोग्य लाभ ने दिल्ली में मेरा यश फैला दिया।"[32]

इस तरह से आचार्य जी की ख्याति फैलती गयी। उन्होंने मदन मोहन मालवीय तथा घनश्यामदास बिड़ला का भी उपचार किया था। शास्त्री जी मरीजों को देखने के बाद जो भी समय बचता उसमें सिर्फ अपना साहित्य लेखन करते। धीरे-धीरे उनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हुईं। शास्त्रीजी को खूब धन और सम्मान मिला जिसके लिये वे सदैव जीवन से संघर्ष करते रहे।

कृतित्व - उपन्यास, गद्य काव्य, कहानी तथा अन्य पुस्तकें

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीजी हिन्दी के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानीकार, उपन्यासकार, आयुर्वेदाचार्य इत्यादि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है तथा अपनी कृतियों में सामाजिक जीवन पद्धति और ऐतिहासिक तथ्यों को उभारा है। इन्होंने लगभग 450 कहानियाँ, 32 उपन्यास लिखे हैं। इनकी कुल प्रकाशित रचनाओं की संख्या 186 है। शास्त्री जी ने कहानी, उपन्यास के साथ-साथ बाल कहानियाँ, नाटक, आत्मकथा, एकांकी, राजनीति, गद्य- काव्य, आयुर्वेद, प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य, धर्म, इतिहास, संस्कृति और नैतिक शिक्षा पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी। जिनमें से उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं।

उपन्यास :

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के प्रमुख उपन्यास निम्नलिखित हैं -

1. हृदय की परख (1918) ई.
2. हृदय की प्यास (1931) ई.
3. अमर अभिलाषा (1933) ई.
4. वैशाली की नगरवधू (दो खण्ड) (1948) ई.
5. मन्दिर की नर्तकी (1951) ई.
6. अपराजिता (1952) ई.

7. आलमगीर (1954) ई.

8. सोमनाथ (1955) ई.

9. वयं रक्षाम: (दो खण्ड) (1955) ई.

10. गोली

11. सोना और खून (1957-58)

12. सह्याद्रि की चट्टाने (1959) ई.

13. बिना चिराग का शहर (1960)

14. देवांगना,

15. धर्मपुत्र

16. तख्ते हाउस

17. राजधर्म

18. शुभदा

19. लाल किला

20. ईदो

21. खग्रास (वैज्ञानिक उपन्यास), इत्यादि

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के ऊपर गांधी जी की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। इनकी गणना प्रकृतिवादी उपन्यासकारों में भी की जाती है। लेकिन ये अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के कारण ही प्रसिद्ध हुए हैं। इसीलिये इन्हें अधिकांश लेखक ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रखते हैं। इनके द्वारा ऐतिहासिक, उपन्यासों में मुख्यत: वैशाली की नगर वधू,

सोमनाथ, वयं रक्षामः आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है। अब हम इनके प्रमुख उपन्यासों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

1- वैशाली की नगर वधू :

इस उपन्यास के माध्यम से आचार्य जी ने बौद्धकालीन संस्कृति के परिवेश को अति सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास दो संस्करणों में प्रकाशित हुआ है। इसकी कथा में बौद्ध कालीन लिच्छिवि संघ की राजधानी वैशाली की नगर वधू, आम्रपाली के चरित्र को अवतरित किया गया है जिसमें उस समय के अत्यन्त हास-विलासपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को प्रदर्शित करने का सफल प्रयास किया गया है। इस उपन्यास की भूमिका में शास्त्री जी ने यह दर्शाया है कि "यह सत्य है कि यह उपन्यास है। परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि वह एक गम्भीर रहस्यपूर्ण संकेत है, जो उस काले पर्दे के प्रति है, जिसकी ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय सहस्त्राब्दियों से छिपी हुई है, जिसे सम्भवतः किसी इतिहासकार ने आँख उघाड़कर देखा नहीं है।"[33]

वैशाली की नगर वधू आम्रपाली के रूप सौंदर्य को देखकर एक बार तत्कालीन मगध के राजा बिम्बिसार भी मोहित हो गये थे। परन्तु उस समय लिच्छिवि गणतंत्र में यह नियम था कि राज्य की जो सबसे खूबसूरत स्त्री होगी वह किसी एक पुरुष की न होकर

अपितु नगर के लिये सुरक्षित रखी जायेगी। इस कारण से बिम्बिसार उससे विवाह नहीं कर सके। परन्तु उसे अपना बनाने के लिये कई बार लिच्छिवि गणतंत्र पर आक्रमण भी करते हैं जिसके फलस्वरूप काफी नर- संहार भी हुआ, जिसे देखकर 'आम्रपाली' का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और वह सब कुछ त्यागकर गौतम बुद्ध की शरण में जाकर बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है और हमेशा के लिये वैशाली से दूर चली जाती है।

2- सोमनाथ :

शास्त्री जी का यह उपन्यास हिन्दी साहित्य के प्रमुख कालजयी उपन्यासों में से एक है। इस उपन्यास को लोकप्रिय होने के पीछे आचार्य शास्त्री जी की कई वर्षों की कठिन साधना, गहन अध्ययन और उनकी अत्यन्त अनोखी लेखन शैली है। यह उपन्यास "काठियावाड़ के प्रभास पट्टन नामक समुद्र तटीय स्थल पर गुजरात के चालुक्य राजाओं द्वारा निर्मित भारत प्रसिद्ध शिवमन्दिर के महमूद गजनवी द्वारा 1024 ई. में तोड़े और लूटे जाने की ऐतिहासिक कथा को आधार बनाकर लिखा गया है। उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें महमूद गजनवी को क्रूर आक्रान्ता के रूप में न दिखाकर कोमल हृदय प्रेमी मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया है।"[34]

सोमनाथ मन्दिर का 12 ज्योतिर्लिंगों में सबसे अग्रणी स्थान है। इस मन्दिर के वैभव को महमूद गजनवी ने 16 बार आक्रमण करके लूटा और मन्दिर को काफी क्षति पहुँचायी। यहाँ की धन-सम्पत्ति को अपने ऊँटों पर लादकर यहाँ से चला गया। लेकिन फिर भी इसका अस्तित्व कायम रहा। गहन अध्ययन तथा उस क्षेत्र का विस्तृत सर्वेक्षण करने के उपरान्त ही आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने इस उपन्यास को लिखा जो इतिहास का जीता जागता दस्तावेज है। एक विदेशी शासक (महमूद गजनवी) के मन्दिर को ध्वस्त करने की विडम्बना को आचार्य जी ने सलीके से औपन्यासिक शैली में पिरोया है।

3- वयं रक्षाम :

यह उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। इस उपन्यास की बिक्री ने सारे रिकार्ड तोड़ दिये। इस उपन्यास की वजह से शास्त्री जी घर-घर में प्रसिद्ध हो गये। इस उपन्यास का मुख्य पात्र राम न होकर रावण को रखा गया है तथा राम के चरित्र से रावण के चरित्र को श्रेष्ठ बताया गया है। ”वयं रक्षाम: में वेद, ब्राह्मण, स्मृति, पुराण आदि के साथ ही मिश्र, मैसोपोटामिया, बैबीलोन, पर्शिया, यूनान आदि देशों की पुरातन कथाओं के सम्मिलित साक्ष्य पर देव, दैत्य, दानव, मानव, यक्ष, गरुड़, वानर, महिष आदि प्रागैतिहासिक जातियों

के जीवन संस्कृति का काल्पनिक रूप खड़ा करके 'अतीत रस' की सृष्टि की गई है। उपन्यास की भाषा शैली बाणभट्ट की कादम्बरी की याद दिलाती है।"[35]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के उपन्यासों में समाज के हर वर्ग की परिस्थितियों को उठाया गया है। शास्त्री जी ने अपने गहन अध्ययन तथा सारगर्भित ज्ञान के द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों का पर्दाफाश किया है।

4- गोली :

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी का एक उपन्यास है 'गोली' जो राजस्थान के राजमहल में राजाओं तथा दासियों के बीच वासना व्यापार को दर्शाता है। चूँकि आचार्य चतुरसेन एक चिकित्सक भी थे इस वजह से उन्हें रंगमहल के भीतर होने वाले सारे क्रिया कलापों की जानकारी प्राप्त हो गयी थी। जिस वजह से इस उपन्यास को सम्पूर्ण मूल पाठ माना जाता है, क्योंकि शास्त्री जी ने अपने अनुभव के आधार पर इस उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास में रंगमहलों की भीतरी जिन्दगी का अत्यन्त ही कारुणिक, रोचक तथा मनोरंजन युक्त चित्रण हुआ है। उसी परिवेश में जीवन यापन करने वाली एक बदनसीब 'गोली' की करुण कहानी जो आजीवन राजा के वासना के चंगुल में फँस जाती है और उसका पति उसके पास आने

या स्पर्श करने तक का साहस नहीं कर पाता है, उसी का वर्णन किया गया है।

5- देवांगना :

यह बौद्ध कालीन उपन्यास है जिसमें बुद्ध के समय के सांस्कृतिक वातावरण का वर्णन किया गया है।

6 - धर्म युद्ध :

इस उपन्यास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने अपने समकालीन लेखकों को उच्च और अपने को उनकी तुलना में सामाजिक तौर पर अत्यन्त ही कम आंका है। उन्हें लगता है कि पार्टियों या सेमिनारों में कोई सम्मान नहीं करना चाहता, जबकि उनसे छोटे-छोटे साहित्यकारों को मंच तक बुलाया गया परन्तु उन्हें यह अवसर मिलना दुर्लभ था। जैसा कि इस उपन्यास में वे स्वयं दिल्ली की एक पार्टी के विषय में कहते हैं -

"मैं सोच ही रहा था कि दाढ़ी के बाद अब मेरी बारी आयेगी। परन्तु कहाँ ? उग्र एकदम उठ खड़े हुए। अपना परिचय दिया, जो कहना-सुनना था, कह गए। परन्तु मेरी बारी तो फिर भी नहीं आई। बारी जैनेन्द्र की। धत्तेरे की। अब मुझे स्वीकार करना पड़ा कि जैनेन्द्र भी मुझसे बड़े साहित्यकार हैं यद्यपि उम्र में वे भी छोटे हैं।"[36]

7- आलम गीर :

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब के शासन से सम्बन्धित कहानी को इस उपन्यास का आधार बनाया गया है। जब औरंगजेब ने मुगल तख्त पर पचास वर्षों तक अबाध गति से 'आलमगीर प्रथम' के नाम से शासन किया था। उसी से सम्बन्धित है।

8- तख्ते ताउस :

इस उपन्यास के माध्यम से मेवाड़ के राणा सांगा तथा मुगल सामाज्य के संस्थापक बाबर के बीच हुए खानवा के युद्ध के साथ-साथ अन्य कई लड़ाइयों के बारे में वर्णन किया गया है।

9- राजधर्म :

प्रस्तुत उपन्यास में कुशल शासकों के राजधर्म तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश का अत्यन्त कौतूहलपूर्णक वर्णन है।

10- शुभदा :

' शुभदा' नामक उपन्यास में स्त्रियों के ऊपर हो रहे अत्याचार तथा उनके पति की मृत्यु हो जाने पर उन्हें जबरन सती होने के लिये विवश करना और उन्हें अफीम, धतूरा आदि अन्य नशीले पदार्थ खिलाकर सती दाह करने के लिये बाध्य करने का मार्मिक वर्णन किया गया है।

11- सोना और खून :

' सोना और खून' का अर्थ होता है 'पूंजी और युद्ध'। इस उपन्यास में यूरोप के जन क्रान्ति पूंजीवाद तथा राष्ट्रवाद के विकास के चित्र को प्रदर्शित किया गया है। शास्त्री जी ने सोना और खून का आज के मनुष्यों में क्या महत्व है उसका भी सारगर्भित तथ्य प्रस्तुत किया है, वे कहते हैं कि- "सोने का रंग पीला होता है और खून का रंग सुर्ख। पर तासीर दोनों की एक है। खून मनुष्य की रगों में बहता है और सोना उसके ऊपर लदा हुआ है। खून मनुष्य को जीवन देता है और सोना उसके जीवन पर खतरा लाता है। पर आज के मनुष्य का खून पर मोह नहीं है, सोने पर है। वह एक-एक ...सोने के लिये अपने शरीर का एक-एक बूंद बहाने को आमादा है।"[37]

12- लाल किला :

आचार्य जी का यह मुगलकालीन उपन्यास है। इस उपन्यास में दिल्ली शासन पर बाबर के आगमन तथा बहादुर शाह जफर के अस्तित्व समाप्त तक का अप्रतिम वर्णन किया गया है।

13- ईदो :

यह अत्यन्त रोचक तथा मार्मिक उपन्यास द्वितीय विश्व युद्ध के अन्तिम समय के घटना क्रम को दर्शाता है। यह उस समय लिखा गया जब वस्तुएँ अत्यन्त मँहगी और दुर्लभ थीं तथा मिट्टी का तेल

भी मिलने में बहुत कठिनाई होती थी। शास्त्री जी ने अपनी टूटी-फूटी छप्पर जो घास फूस से बनी थी, मिट्टी का दिया जलाकर इस उपन्यास को आरम्भ किया था।

वैज्ञानिक उपन्यास :

1- खग्रास -

इस उपन्यास में आचार्य शास्त्री जी ने नक्षत्रों, ग्रहों तथा ज्योतिष सम्बन्धी तथ्यों को बड़ी ही तटस्थता के साथ प्रस्तुत किया है।

गद्य काव्य :

आचार्य शास्त्री जी ने उपन्यास कहानी के साथ-साथ गद्य काव्य की भी रचना की जिससे उनकी प्रसिद्धि और बढ़ती गयी। इनके गद्य काव्यों में भारतीय संस्कृति के स्पष्ट रूप झलकते हैं। जो निम्नलिखित हैं -

1. हृदय की परख
2. अन्तस्तल
3. अनुताप
4. रूप
5. दुःख
6. माँ गांगी
7. अनूप शहर के घाट पर
8. चित्तौड़ के किले में
9. स्वदेश

.कहानियाँ :

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की कहानियों के प्रति अत्यधिक रुचि थी। सर्वप्रथम इन्होंने 1906-07 के बीच लेखनी को छुआ। शास्त्री जी स्वयं अपने एक वक्तव्य में कहते हैं कि मेरा ख्याल है, सबसे पहले मैंने "हिन्दुओं की छाती पर जहरीली छुरी" नाम की एक छोटी सी पुस्तक लिखी। जिसमें विधवाओं की हिमायत थी। बाद में यह पुस्तक 40, 50 हजार की संख्या में छपी। कई सुधारकों ने उसे छापकर लोगों को मुफ्त बाँटा। इसी से इनका उत्साह बढ़ा और इन्होंने पहली कहानी 'सच्चा गहना' लिखी। इनकी कहानियों को साधारण तथा मुगलकालीन, ऐतिहासिक, बौद्धकालीन, सामाजिक समस्याप्रधान, वीरता-प्रधान, राजनीतिक, भाव-प्रधान, कौतुक-प्रधान और पारिवारिक कहानियों में बाँटा जा सकता है।

शास्त्री जी राजपूती जीवन से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में राजपूती जीवन की प्रत्येक घटनाओं के बारे में विस्तृत और सजीव चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। आचार्य जी ने लगभग 450 कहानियाँ लिखी हैं। जो देशकाल तथा सांस्कृतिक वातावरण से सम्बन्धित हैं और हमें जीवन में सत्कर्मों के माध्यम से आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहन प्रदान करती हैं। शास्त्री जी की समस्त बिखरी हुई कहानियों को एकत्रित करके 'हिन्द पॉकेट बुक्स' (नई दिल्ली) ने सिलसिलेवार एक साथ प्रकाशित करने का निश्चय करके 5 भागों में

समस्त कहानियों को संकलित किया है। जिससे यदि कोई पाठक इनकी कहानियों को पढ़ना चाहे तो उसे अन्यत्र भटकने की जरूरत नहीं है, वह सभी कहानियों का इन पाँच संग्रहों के माध्यम से रसास्वादन कर सकता है एवं उनकी कहानियों में वर्णित तथ्यों को अपने जीवन में उतार कर प्रगति के मार्ग पर सफलतापूर्वक पहुँच सकता है। आचार्य जी के इन पाँचों संग्रहों के नाम निम्नलिखित हैं -

1. बाहर-भीतर (सम्पूर्ण कहानियाँ - भाग-1)
2. दुःखवा मैं कासे कहूँ। (सम्पूर्ण कहानियाँ - भाग-2)
3. धरती और आसमान (सम्पूर्ण कहानियाँ - भाग-3)
4. सोया हुआ शहर (सम्पूर्ण कहानियाँ - भाग-4)
5. कहानी खत्म हो गई (सम्पूर्ण कहानियाँ - भाग-5)

यहाँ पर मैं आप सब का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ कि मुझे शोध के दौरान अथक परिश्रम करने के पश्चात पांचों कहानी संग्रह प्राप्त हो गये हैं। प्रत्येक कहानी संग्रह के 'शीर्षक' अलग-अलग हैं। तथा हर संग्रह में कई कहानियाँ संकलित है। आगे हम इनकी समस्त कहानियों का आवश्यकतानुसार वर्णन करेंगे। इनका पहला कहानी संग्रह है

1. बाहर भीतर -:

यह कहानी संग्रह आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की सम्पूर्ण कहानियों की प्रथम कड़ी है। जिसमें शास्त्री जी की प्रतिभा, साहस तथा अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप अत्यंत प्रसिद्ध और मार्मिक कहानियों का उल्लेख किया गया है। इसमें कुल 18 कहानियों को सम्मिलित किया गया है जो लेखक के उच्च शिखर को प्रदर्शित करती हैं। इन कहानियों के नाम निम्नलिखित हैं

1. लाला रुख
2. बावर्चिन
3. अबुलफजल-वध
4. प्रबुद्ध
5. भिक्षु राज
6. आचार्य उपगुप्त
7. वर्मा रोड
8. लाल पानी
9. रूठी रानी
10. जैसलमेर की राजकुमारी
11. वीर बादल
12. बाण - वधू
13. नवाब ननकू
14. द्वितीया
15. पुरुषत्व
16. कन्यादान
17. बाहर भीतर
18. विधवाश्रम

इन कहानियों में शास्त्री जी ने अधिकांशतः मुगल-कालीन, राजपूती, बौद्ध-कालीन सामाजिक, ऐतिहासिक परिस्थितयों का चित्रण किया है। हम देखते हैं कि 'लाला रुख' कहानी में मुगल कालीन एक कोमल भावुक प्रेम का अत्यंन्त ही मनमोहक रेखा चित्रण हुआ है, जिसमें पाठक कहानी को पढ़ते-पढ़ते भावों के सागर में डूब सा जाता है और अत्यधिक सुखद अनुभूति को ग्रहण करता है। वहीं पर हम आगे 'बावर्चिन' कहानी में देखते हैं कि किस प्रकार से मुगल काल के अन्तिम शासक बहादुर शाह के पतन तथा मुगल बेगमों के कीमती अश्रु किस तरह से अनायास ही निकलने को 'मजबूर' दिखाई पड़ते हैं।

मुगल कालीन शासकों के साम्राज्य में विश्वासघातियों का सदा बोल-बाला रहा है जो समय-समय पर अपने ही राजा को क्षति भी पहुँचाते हैं। इनकी कहानी 'नवाब ननकू' अत्यंत प्रसिद्ध कहानी है जिसमें चरित्र और आचार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इसमें एक राजा जो कि शराबी, कवाबी तथा वेश्यागामी लम्पट रईस है जिसने अपनी सारी सम्पत्ति गवाँ दी और एक दरिद्र का जीवन व्यतीत करता है। इसका बड़ा ही मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इनकी एक कहानी 'बाहर भीतर' है, जिसके नाम पर ही इस कहानी संग्रह का नाम लिखा गया है। इसमें एक रूपवान स्त्री की सुन्दरता को ही प्रमुख रत्न माना गया है और उसके अन्य प्रकार के सभी गुण दोषों को

नगण्य समझा गया है। यह कहानी सामाजिक-समस्या पर प्रकाश डालती है। जिसका कुछ अंश निम्नलिखित है -

"ऊषा कैसा प्यारा नाम है। जब से मैंने ऊषा से ब्याह किया है, हमेशा ऊषा काल में जाग उठता हूँ। मैं एकटक देखता रहता हूँ। कितनी प्यारी सुनहरी किरणों को धरती पर बिखेरती है। पूर्व के आसमान पर पीली लगती है। वह ऊषा-पीला, शान्त, उजला आलोक वह कैसी प्यारी लगती है, किस तरह आनन्द देती है। ऐसे ही मेरी ऊषा भी मेरे जीवन के अँधेरे को छूते ही उज्ज्वल आलोक करेगी।"[38]

2. दुखवा मैं कासे कहूं -

यह कहानी संग्रह हिन्दी साहित्य के अमर शिल्पी कथाकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की संम्पूर्ण कहानियों की दूसरी कड़ी है। जिसमें कुल 26 कहानियों को संकलित किया गया है। इसमें मुगल कालीन, बौद्ध-कालीन, राजपूती, लौह - पुरुषों इत्यादि से सम्बन्धित प्रतिष्ठित कहानियाँ समाविष्ट हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी
2. नूरजहाँ का कौशल
3. शराबी की बात
4. सत्प्रण
5. मूल्य
6. हेर-फेर
7. कुम्भा की तलवार
8. हल्दीघाटी में

9. राजपूतनी की राख
10.जीवन्मृत
11.वारंट
12.लौह - पुरुष
13.भाट का वचन
14.लात की आग
15.रघुपति सिंह
16.दूध की धार
17.युगलांगुलीय
18.सोने की पत्नी
19.पतिता
20.म्यूजिक मास्टर
21.वीर - विजय
22.मन्दिर का रखवाला
23.राजकुमार चूड़ाजी
24.आवारागर्द
25.पीर नाबालिक
26.तस्वीर

इन सभी कहानियों को शास्त्री जी ने रात-रात भर जाग कर, अपनी सुख सुविधाओं तथा शारीरिक चिंता ना करते हुए, बड़ी तटस्थता के साथ लिखा है। इनकी कहानियाँ अत्यधिक प्रसिद्ध भी हुईं, क्योंकि इसमें समाज के हर वर्ग चाहे वो पूंजीपति हो या श्रमिक, राजा हो या रंक, इत्यादि सभी क्षेत्रों को अपनी कहानी में स्थान दिया है। अपनी कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' में इन्होंने अपने उस समय के निजी अनुभव को उकेरा है जब वे एक चिकित्सक के रूप में किसी रियासत में

एक राजकुमारी की चिकित्सा करने गये थे। उस समय उसकी जो मनः स्थिति थी उसी से प्रभावित होकर इन्होंने अपनी इस कहानी को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। जो कि बहुत ही प्रसिद्ध हुई।

यह कहानी मुगल कालीन है जिसमें शाहजहाँ तथा सलीमा के विवाहोत्तर सम्बन्धों को दर्शाया गया है। जहाँ पर राजा के अन्दर शक की मजबूत दीवार खड़ी हो जाती है और उसी दीवार से रानी सलीमा के प्राणों की बलि ली जाती है। बाद में सच्चाई ज्ञात होने पर राजा सिर्फ हाथ मल के रह जाता है। जिसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है।

“बादशाह शाम की हवा खोरी को नजर बाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आये, और चिट्ठी पेश करके अर्ज की- हुजूर, गजब हो गया। सलीमा बीबी ने जहर खा लिया है, और वह मर रही हैं। क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए सलीमा के महल पहुँचे। प्यारी दुलहिन सलीमा जमीन पर पड़ी है। आंखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से न रहा गया। उन्होंने घबराकर कहा - हकीम, हकीम को बुलाओ ! कई आदमी दौड़े।”[39]

शास्त्री जी की एक कहानी 'सोने की पत्नी’ है जिसमें एक रघुनाथ नाम का व्यक्ति गाँव से दिल्ली जाकर वहाँ की चकाचौंध में खो जाता है। घर आकर पत्नी से वहाँ की धन-सम्पदा, सोने-चांदी का वर्णन करता है और उसी को पाने की चाहत रखना है। जिससे उसकी स्थिति दयनीय हो

जाती है। एक दिन शिव जी उसकी यह दशा देखकर उसकी पत्नी को सोने की बना देते हैं। रघुनाथ बहुत प्रसन्न हो जाता है। एक दिन की बात थी कि बच्चों को पहनने के लिये कपड़े नहीं थे तो उसकी पत्नी ने जो कहा उसे स्वार्थी रघुनाथ ने धन की लालसा में सहर्ष स्वीकार कर लिया- “मैं पैर की कानी उंगली काटे देती हूँ, उसे बेचकर दिल्ली से लल्लू के लिये गाड़ी और गर्म कोट ले आओ।”

'तुम्हें दुःख न होगा; उंगली काटोगी ?
'दुःख काहे का होगा, कुछ होगा तो हुआ करे, लल्लू की गाड़ी तो आएगी, और कोट भी, गर्मागर्म, मेम के लड़कों जैसा।'
' तो लाओ गंड़ासा, मैं उंगली काट दूं।'[40]

3. धरती और आसमान :

यह कहानी संग्रह की तीसरी कड़ी है जिसमें हिन्दी के परम विख्यात आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की कुल 20 कहानियों को संकलित किया गया है। यह कहानी संग्रह ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रेम व भावना प्रधान कहानियों का आकर्षक एवं अद्‌भुत संकलन है। जो व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक परम्पराओं एवं तत्कालीन सांस्कृतिक गतिविधियों का वर्णन करती है। इस संग्रह की प्रमुख कहानियाँ निम्नलिखित हैं -

1. पानवाली
2. बुलबुल हजार दास्तान
3. फूलवालों की शैल
4. अम्बपालिका
5. क्रीता
6. प्रतिदान

7. द्वन्द्व
8. पत्थर में अंकुर
9. विश्वास पर विश्वास
10. सफेद कौआ
11. लम्ब ग्रीव
12. मुखबिर
13. मुहब्बत
14. अकस्मात्
15. ठकुरानी
16. फिर
17. प्रणय-वध
18. टार्चलाइट
19. धरती और आसमान
20. नहीं

इस संग्रह की पहली कहानी 'पानवाली' मुगल कालीन प्रसिद्ध कहानी है जिसमें मदिरा और नैशोत्सवों के कारण पूरे लखनऊ का तख्त डूब गया। यह कहानी मुगल काल के राजदरबारों की परत दर परत घटनाओं का दिग्दर्शन कराती है। शास्त्री जी की कहानी 'अम्बपालिका' जो कि सन् 1928 ई. में लिखी गयी है। यह कहानी अम्बपालिका से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम कहानी है। इसके बाद इसी को आधार मानकर अनेक प्रकार की कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे गये हैं। आचार्य शास्त्री जी ने इसी कहानी के आधार पर अपना एक महत्वपूर्ण उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' लिखी। जो कि हिन्दी साहित्य में अमर हो गयी।

इस कहानी में आचार्य जी ने उस समय के लिच्छिवि गणतन्त्र के नियमानुसार जो राज्य की सबसे सुन्दर कन्या होती थी, उसे एक पुरुष की न होकर बल्कि राज्य की जनता के लिये सुरक्षित रखा जाता था, का वर्णन अत्यन्त ही कारुणिक और मनमोहक तरीके से प्रस्तुत किया है। जिससे पाठक एक बार में ही पूरी कहानी पढ़ने को उत्कण्ठायमान हो जाता है।

अम्बपालिका नाम की बालिका अत्यन्त सुन्दर होने के नाते लिच्छिवि गणतन्त्र की नगर वधू बना दी जाती है। जिसके रूप सौन्दर्य के प्रति मगध के राजा बिम्बिसार और लिच्छिवि गणतन्त्र के राजा के साथ कई बार युद्ध भी होता है। अन्ततः अम्बपालिका नर संहार को देखकर द्रवीभूत हो जाती है और वह बौद्ध धर्म धारण करके एक भिक्षुणी बनकर लिच्छिवि से हमेशा के लिये चली जाती है। यह बौद्ध कालीन कहानी है। उस समय महात्मा गौतम बुद्ध भी विराजमान थे। अम्बपालिका के रूप सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार है "वह बहुत महीन श्वेत रेशम की पोशाक पहने हुए थी। वह इतनी बारीक थी कि उसके आर-पार साफ दीख पड़ता था। उसमें से छनकर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी।"[41]

इसी क्रम में इनकी कहानी 'धरती और आसमान' में एक ऐसे व्यक्ति की कहानी को दर्शाया गया है जो कि एक सफल कलाकार तो है

परन्तु एक सफल गृहस्थ नहीं हो सका। अपनी कला के मोह में धीरे-धीरे वह खोता गया और अपनी पत्नी को अभाव की दुनिया में पहुँचा दिया। वह अधिकतर एक सच्चे आदर्श की व्याख्या तो करता है परन्तु अपनी पत्नी के प्रति असंवेदनशील रहता है। इन्हीं सब तथ्यों को इस कहानी में दर्शाया गया है जहाँ पर हम देखते हैं कि "पत्नी अपने विचारों में डूबी हुई थी। वह समझी थी पति सो गए हैं। उसने उनके आराम में दखल देना ठीक नहीं समझा। वह चुपचाप अपनी चारपाई पर आ लेटी थी, और अपने विचारों में डूब उतरा रही थी। उसने पति की पूरी बात नहीं सुनी। जो सुनी वह ठीक-ठीक नहीं समझीं। पति जग रहे है यह जानते ही उसने जैसे एकाएक सावधान होकर कहा क्यों जी, घर में एक भी कांच का गिलास नहीं है। बड़ी खराब बात है। आए-गयों के सामने कितना शर्मिंदा होना पड़ता है।"[42]

यह सब सुनकर पति की सारी विचारधारा क्षत-विक्षत हो गई। उसे अपनी पत्नी के सूखे हुए होंठ और फटी हुई चादर को देखकर अपने जीवन के पुराने दिन याद आने लगे जब उसने शादी के वक्त उसे हर सुख देने का वचन दिया था।

4. सोया हुआ शहर :

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की कहानियों का यह चौथा संग्रह है। जिसमें लेखक ने ऐतिहासिक, सामाजिक, व प्रेम-

प्रवाह में डूबी हुई कहानियों को रखा है। इसमें कुल महत्वपूर्ण 31 कहानियाँ संकलित हैं। जिनकी क्रमवार सूची निम्नलिखित है -

1. सोया हुआ शहर
2. ताज
3. दे खुदा की राह पर
4. कमल किशोर
5. सुख-दान
6. शर्मा-जी
7. पंडित छोटेलाल
8. चौधरी
9. जापानी दासी
10. तिकड़म
11. चिट्ठी की दोस्ती
12. राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी
13. राजा साहब की कुतिया
14. राजा साहब की पतलून
15. चौथी भांवर
16. घोड़ी का मोल-तोल
17. राज्यों की चौसर
18. हैदरअली
19. विश्वासघात
20. दिल्ली-दरबार में शिवाजी राजे
21. कैदी
22. दिया सलाई की डिबिया
23. अब्बा जान
24. मनुष्य का मोल
25. जीजाजी
26. प्लेंचेट

27.दंड
28.सविता
29.रोगी-परीक्षा
30.बहिन ! तुम कहाँ
31.मैं तुम्हारी आंखों को नहीं, तुम्हें चाहता हूँ।

इस संग्रह की पहली कहानी 'सोया हुआ शहर' के नाम पर ही इस संग्रह का नाम भी रखा गया है। इस कहानी में फतेहपुर सीकरी के खण्डहरों में प्रेम-भावना व मुगल-वासना को अत्यन्त ही सजीव चित्रण करने का प्रयास किया गया है जिसमें शाहजहां तथा मुमताज महल के सुकोमल भावुक प्रेम-भावना को उकेरा गया है।

5. कहानी खत्म हो गई :

यह कहानी संग्रह शास्त्री जी की कहानियों का पांचवा व अन्तिम कहानी संग्रह है जिसे हिन्द पॉकेट बुक्स ने प्रकाशित किया है, पर मुझे कहीं मिली नहीं। इस पांचवें संग्रह का प्रकाशन 'राजपाल एण्ड सन्ज' ने भी किया है जो मुझे इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त हुई है। यह बताते हुए बहुत खुशी हो रही है कि मैंने आचार्य चतुरसेन की कहानियों को उपर्युक्त पांच संग्रहों के माध्यम से प्राप्त कर लिया है, जिससे शोध-कार्य सुचारु रूप से, सुसंगठित एव सटीक तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है। इस संग्रह में कुल 25 कहानियाँ प्रस्तुत की गई हैं। जिनकी सूची निम्नवत है -

1. कहानी खत्म हो गई
2. ककड़ी की कीमत
3. बड़नककी
4. प्रतिशोध
5. वेश्या
6. खूनी
7. भाई की विदाई
8. अभाव
9. क्रान्तिकारिणी
10. कलंगा दुर्ग
11. ग्यारहवीं मई
12. राजधर्म
13. मृत्यु-चुंबन
14. वासवदत्ता
15. डाक्टर साहब की घड़ी
16. कलकत्ते में एक रात
17. प्यार
18. मेहतर की बेटी का भात
19. सिंहगढ़ - विजय
20. शेरा भील
21. मास्टर साहब
22. सुलह
23. रानी रासमणि
24. आंके-बांके राजपूत

'कहानी खत्म हो गई' कहानी में शास्त्री जी ने एक ऐसी लाचार विधवा के पतन का चित्रण किया है जिससे पाठक की आंखों से अश्रु अनायास ही निकल जाते हैं। इस पतित विधवा को समाज ने ही निरन्तर

नीचे धकेला परन्तु पाप और अपराध की गठरी इसी विधवा के सिर पर ही लगी। इस कहानी को बड़े ही रोचक ढंग से लिखा गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री बड़े ही अक्खड़ और स्वाभिमानी लेखक थे। इन्होंने कभी भी अपने कार्यों से समझौता नहीं किया। यह जो भी लिखना चाहते थे, वह स्वच्छन्द विचारधारा से लिखते थे। कभी किसी के आगे झुके नहीं।

दस बाल कहानियाँ :

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने बालकों के नैतिक कर्तव्य-बोध तथा मनोरंजन हेतु कुछ बाल कहानियों को भी लिखा है। जिससे सत्य मार्ग का अनुसरण करके तथा अपने कर्तव्यों का पालन करके बालक समाज में प्रतिष्ठा पाता है और एक आदर्श जीवन जीने का दृष्टिकोण प्राप्त करता है। शास्त्री जी की बाल कहानियाँ बच्चों के प्रति एक नये भाव- बोध को जागृत करती हैं। इनकी सभी बाल कहानियाँ सचित्र लिखी गयी हैं। जिससे उनको पढ़ने की ललक बढ़ती जाती है।

'संतोषी भोला' नामक बाल कहानी में किस प्रकार से सब कुछ हाथ से निकल जाने के बाद भी भोला जरा सा विचलित नहीं होता, बल्कि सब संतोष कर लेता है, जिसका फल उसे कुछ समय पश्चात प्राप्त हो जाता है। इसलिये तो कहा जाता है कि संतोष का फल मीठा होता है। इनकी बाल कहानियाँ निम्नलिखित हैं, जो 'दस बाल-कहानियाँ' नामक संग्रह में संकलित हैं।

दस बाल कहानियाँ (सचित्र) :

1. मारवाड़ का शेर
2. हठी हम्मीर
3. संतोषी भोला
4. चालाकी का बदला
5. केसरी सिंह की रिहाई
6. बात का धनी
7. भाई की विदाई
8. रणबांका राठौर
9. बुलबुल की कहानी
10. राजा के छोटे बेटे की कहानी

नाटक :

1. राजसिंह
2. छत्रसाल
3. गांधारी
4. श्री राम
5. अमर राठौर
6. उत्सर्ग, क्षमा

आत्मकथा :

1. यादों की परछाइयाँ - भाग - 1
2. मेरी आत्म कहानी - भाग - 2

एकांकी संग्रह :

1. राधा कृष्ण
2. पाँच एकांकी
3. प्रबुद्ध
4. सत्यव्रत हरिश्चंद्र
5. अष्ट मंगल।

आयुर्वेदिक ग्रन्थ :

1. आरोग्य शास्त्र
2. अमीरों के रोग
3. छूत की बीमारियाँ
4. सुगम चिकित्सा
5. काम कला के भेद

राजनीति :

1. सत्याग्रह और असहयोग
2. गोल सभा
3. तरलाग्नि
4. गांधी की आंधी (पराजित गांधी)
5. मौत के पंजे में जिन्दगी की कराह

इन सबके अतिरिक्त शास्त्री जी ने प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य, धर्म, इतिहास, संस्कृति और नैतिक शिक्षा पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। फिर धीरे-धीरे इनकी प्रवृत्ति बौद्ध-कालीन एक छोटी सी चर्चा 'अम्बपाली' के अध्ययन के पश्चात बदल गयी और ये ऐतिहासिक कहानियाँ लिखना प्रारम्भ कर दिये। इन्होंने अपनी पहली ऐतिहासिक कहानी 'अम्बपाली' लिखी, जो बहुत प्रसिद्ध हुई। इनका रचना संसार भी धीरे-धीरे बढ़ता गया और इन्होंने लगभग 450 कहानियाँ, 32 उपन्यास तथा कई अन्य गद्य-काव्य, नाटक, आत्मकथा इत्यादि विधाओं से सम्बन्धित लेखन कार्य किया। ये समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, कुरीतियों, भ्रष्टाचार के

खिलाफ हमेशा आवाज उठाते रहे, जिससे इनकी समाज में बनती कम थी। इन्होंने आजीवन एक भी मित्र नहीं बनाया और निरन्तर अपने कार्य के प्रति सचेत रहते थे। इन्होंने जिन्दगी में अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करते हुए अपना अध्ययन पूर्ण किया। अपनी कृतियों के द्वारा आज हिन्दी साहित्य में इनका नाम आदर्श के साथ लिया जाता है।

हिन्दी कहानी के इतिहास में चतुरसेन शास्त्री का स्थान

अमर कहानियों के रचयिता आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी कथा साहित्य के अद्वितीय कथा शिल्पी के रूप में जाने जाते हैं। उनकी कहानियाँ और उपन्यास हिन्दी साहित्य के इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं।

हिन्दी की सभी गद्य विधाओं में 'कहानी' सबसे सशक्त विधा बनकर विकसित हुई है। हम देखते हैं कि आज कहानी के पाठक अन्य सभी विधाओं की तुलना में सर्वाधिक हैं। लोग कहानियों में अत्यधिक रुचि लेते हैं तथा इसके माध्यम से सामाजिक, पारिवारिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक जीवन के बारे में ज्ञान अर्जित करते हैं। यही कारण है कि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों की मांग सर्वाधिक है। क्योंकि छोटे बच्चे हों या बड़े-बुजुर्ग सभी कहानियाँ सुनना और सुनाना पसंद करते हैं। कहानियों के द्वारा बालकों को अत्यधिक सुगमता से ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। जैसा कि कहानी के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएं या कहानियाँ निकला करती हैं, वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' के नाम से

बंगभाषा में चल पड़ी थीं। ये कहानियाँ जीवन के बड़े मार्मिक और भावव्यंजक खण्ड चित्रों के रूप में होती थीं। द्‌वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रकट होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे।"[43]

एक आलोचक, विचारक तथा निबन्धकार के रूप में प्रख्यात लेखक डॉ.. नगेन्द्र अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में चतुरसेन शास्त्री की कहानियों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि -

"चतुरसेन शास्त्री ने विभिन्न युगों के ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित अनेक मार्मिक कहानियाँ लिखीं, जिनमें 'दुःखवा मैं कासो कहूँ मोरी सजनी' अत्यंत प्रसिद्‌ध हुई, पर बाद में पता चला और अब यह सिद्‌ध हो चुका है कि यह कहानी बंगला कथाकार हरिसाधन मुखोपाध्याय की 'सेलिना बेगम' कहानी का रूपान्तर है।"[44]

विगत सौ वर्षों में हिन्दी कहानी ने जो आशातीत प्रगति की है वह अत्यंत उत्साहवर्धक है। अन्य सभी गद्‌य विधाओं की अपेक्षा आज की हिन्दी कहानी में युगबोध की क्षमता सबसे अधिक दिखाई पड़ती है। कहानी में जितनी सहजता एवं स्पष्टता के साथ मानव जीवन के किसी एक अंग या संवेदना अथवा संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है वह किसी अन्य विधा के द्‌वारा नहीं। कहानी और उपन्यास दोनों का उद्‌देश्य एक हृदय के भावों को तथा उनके विचारों को दूसरे के हृदय तथा विचारों तक प्रेषित करने में है। प्राचीन काल से ही अब तक मनुष्य इसी प्रकार अपने

मन के विचारों का आदान-प्रदान करता चला आया है जिसकी पुष्टि निम्नलिखित वाक्यों से हो जाती है। "कला की चरम सार्थकता एक हृदय के भावों तथा विचारों को दूसरे हृदय के भावों तथा विचारों तक पहुँचाने में है। आदि युग से आज तक मनुष्य इसी प्रकार एक दूसरे के विचारों से परिचित होता आया है। कथा, शायद इस प्रकार की पहली और अन्तिम कला है। संसार के साहित्य का आधार कहानियाँ ही हैं। इस दृष्टिकोण से कहानी और उपन्यास कथा-साम्य के साथ कुछ अन्तर भी है, यद्यपि दोनों का उद्गम एक ही है- जीवन की मार्मिकता।[45]

वस्तुतः यदि देखा जाय तो कहानी कला की सार्थकता उसके सामाजिक सन्दर्भों में निहित है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति, परिवार, गाँव, नगर एवं राष्ट्र विभिन्न इकाइयाँ हैं । इनका परस्पर अटूट सम्बन्ध होता है। हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का प्रारम्भ 1900 ई. के आस-पास माना जाता है। हिन्दी की प्रथम कहानी कौन सी है- यह एक विवादात्मक प्रश्न है।

इस सम्बन्ध में जिन कहानियों का नाम लिया जाता है वे निम्नलिखित हैं -

1. रानी केतकी की कहानी (1800 ई.) - मुंशी इंशा अल्ला खाँ
2. राजा भोज का सपना (1856 ई.) - शिवप्रसाद सितारे' हिन्द'
3. इन्दुमती (1900 ई.) - किशोरी लाल गोस्वामी
4. एक टोकरी भर मिट्टी (1901 ई.) - माधव राव सप्रे
5. ग्यारह वर्ष का समय (1903 ई.) - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
6. दुलाई वाली (1901 ई.) - बंग महिला

इनमें से प्रथम दो कहानियों में कहानी के तत्व विद्यमान नहीं हैं। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'इन्दुमती' को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। जिसका प्रकाशन सन् 1900 ई. में सरस्वती पत्रिका में हुआ था। शास्त्री जी के प्रसिद्ध उपन्यास धर्मपुत्र (1961) को आधार बनाकर यश चोपड़ा ने इसी नाम से फिल्म बनायी। जो कि बहुत प्रसिद्ध भी है।

हिन्दी कहानी के इतिहास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी का अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शास्त्रीजी ने कहानी और उपन्यास दोनों ही क्षेत्रों में अद्वितीय लेखन कार्य किया। इन्होंने लगभग 450 कहानियाँ लिखी जो जीवन के विभिन्न आयामों को स्पष्टतया प्रकट करती हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी का बचपन बहुत ही कष्टों तथा अभावों में बीता। इन्होंने जीवन में विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए कड़ी मेहनत और लगन से जीवन को अनुकूल बनाया। आचार्य शास्त्री जी राजपूती जीवन से भी बहुत प्रभावित थे। अतः उन्होंने राजपूती जीवन से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ लिखीं। शास्त्री जी प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द जी के समकालीन थे। इन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक राजनीतिक हर प्रकार की परिस्थितियों का वर्णन अपनी कहानी में किया है। आचार्य जी ने भी प्रेमचन्द की तरह कहानी को जीवन का अंग माना है। मुंशी प्रेमचन्द एक अच्छी कहानी के सम्बन्ध में कहते हैं कि- ”सबसे उत्तम

कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो। अपनी ही कहानियों से उदाहरण देते हुए आपने बताया कि मेरी 'सुजान भगत', मुक्ति मार्ग, पंचपरमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी, महातीर्थ नामक सभी कहानियों में एक न एक मनोवैज्ञानिक रहस्य खोलने की चेष्टा की गयी है।"[46]

इसी प्रकार आचार्यजी ने भी अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक रहस्य को दिखाने का सफल प्रयास किया है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में शास्त्री जी को भी यथोचित स्थान दिया है तथा इनको प्रेमचंद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक और प्रताप नारायण मिश्र के दृष्टिकोण के अन्तर्गत रखते हैं। जैसा कि वे अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में कहते हैं कि -"मनुष्य के अनेक पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाले, जैसे प्रेमचन्द जी का 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गोदान', श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा का 'माँ', 'भिखारिणी', श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव का 'विदा', 'विकास','विजय' चतुरसेन शास्त्री का 'हृदय की प्यास'।"[47]

इत्यादि ऐसे लेखक है जिन्होंने मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता को अपने कथा साहित्य में यथोचित स्थान दिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी शास्त्री जी के उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि के विषय में कहते हैं कि "श्री चतुरसेन शास्त्री ने उपन्यास और कहानियाँ तो

लिखी ही हैं, नाटक की ओर भी हाथ बढ़ाया है। अपने 'अमर राठौर' और 'उत्सर्ग' नामक ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने कथा वस्तु को अपने अनुकूल गढ़ने में निपुणता अवश्य दिखाई है, पर अधिक ठोंक पीट के कारण कहीं-कहीं ऐतिहासिकता और कहीं-कहीं घटनाओं की महत्ता भी झड़ गई है।”[48]

शास्त्री जी प्रारम्भ में सामाजिक कुरीतियों पर छोटी छोटी कहानियाँ लिखना प्रारम्भ कर दिये थे। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि शास्त्री जी राजपूत-जीवन से अत्यधिक प्रभावित थे। इसलिये राजपूत जीवन और कुरीति निवारण मूलक अनेक प्रकार की छोटी-छोटी गद्य-काव्य और कहानियाँ लिखने लगे। इन्होंने सन् 1912 के लगभग प्रताप, कर्मवीर, शारदा, सुधा, माधुरी, चाँद इत्यादि पत्रिकाओं में तेजी से लिखना प्रारम्भ कर दिया।

यदि देखा जाये तो आचार्य जी की कहानियों को अलग-अलग पत्रिकाएँ अलग-अलग विषय को लेकर छपती थीं। 'प्रताप' खास तौर पर उनके वीर रस भरे गद्य काव्यों को छापता था तथा 'चाँद' कुरीति निवारण कहानियाँ और लेख छापना पसन्द करता था।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की सबसे प्रिय कहानी ' दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' सब कहानियों में प्राचीन मानी जाती है और यह कहानी लगभग 1917 ई. में लिखी गई थी। यह कहानी आचार्य जी ने तब

लिखी थी जब वे एक चिकित्सक के रूप में कार्य करते थे। एक राजकुमारी के रूप वैभव और उसके शरीर पर मूल्यवान हजारों, लाखों मूल्य के हीरे-मोती, जवाहरात को देखा तब उन्होंने तुरन्त राजकुमारी की मनोवृत्ति को समझकर तथा प्रभावित होकर 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' कहानी की शुरुआत की। इस कहानी में लेखक ने मुगलों के राजसी वैभव तथा उनके राज-काज का चित्र खींचा है।

राजपूती परक :

आचार्य जी को राजपूती परक कहानियों का शौक प्रारम्भ से ही रहा था। वे अपने राजपूती-चरित्र परक कहानियों के विषय में कहते हैं कि - "राजपूत-चरित्र पर मेरी कहानियों में मेरा तरुण रक्त है। पहले जब मैं अपने को जन्मत: क्षत्रिय समझता था, तब ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं अपनी ही गुण गरिमा गा रहा हूँ। वास्तव में राजपूत-जीवन पर जो मेरा मन केन्द्रित हुआ वह इसलिये नहीं कि राजपूत पीड़ित और व्यथित थे, अपितु मेरा मन राजपूत-जीवन के प्रति ममता से भर गया था। ऐसा कुछ लगता था कि जैसे ये हमारे पूर्वजों की गाथाएँ हैं। इसी से राजपूत-जीवन पर मेरी कलम तीखी चली।"[49]

राजपूत बहुत ही साहसी और वीर योद्धा हुआ करते थे। वे अपने प्राणों की परवाह किये बगैर शस्त्र लेकर युद्ध में लड़ते हुए मर जाना पसन्द करते थे परन्तु कायर की तरह युद्ध से मुँह मोड़ना उनके लिये

पाप से भी बढ़कर था। इन युद्धों में स्त्रियों ने भी अपने तेज और उत्साह का सहयोग किया। जितना सहयोग राजपूत स्त्रियों का युद्ध क्षेत्र में रहा है उतना शायद ही धरती पर किसी अन्य जाति की स्त्रियों का रहा हो। जैसा कि वे अपने 'बाहर भीतर' कहानी संग्रह में लिखते हैं कि -

"जैसलमेर की राजकुमारी 'कुम्भा-की तलवार', 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़ विजय' ऐसी ही कहानियाँ है। 'राजपूत बच्चे', 'स्त्रियों का ओज', और 'मरीखाल की हाय' में जो छोटे-बड़े स्केच राजपूती जीवन के इतने सजीव बन गए, वह केवल अन्तर्वेग के ही कारण। इनमें मैंने परिश्रम कुछ ऐसा नहीं किया।"[50]

मुगलकालीन :

राजपूत जीवन चरित्र परक कहानियों के पश्चात आचार्य जी ने मुगलकाल की मुगल चरित्र पर लेखनी चलाई। मुगलकालीन कहानियों में भी इनका स्थान सर्वश्रेष्ठ रहा तथा अपनी कहानियों के माध्यम से मुगल कालीन संस्कृति को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। उनका यह प्रयास हिन्दी कहानी में उत्कृष्ट योगदान रखता है। जैसा कि वे कुछ मुगल कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं कहते हैं कि- " सन् 1917 ई. में मैंने अपनी प्रसिद्ध मुगल कालीन कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' लिखी। इसके बाद 'दे खुदा की राह पर', 'सोया हुआ शहर', 'लाला रुख', 'नवाब कुदसिया बेगम', 'बावर्चिन', आदि कहानियाँ जो मैंने लिखीं उनमें मैंने शुद्ध सात्विक भावदर्शन और चरित्र-चित्रण के साथ मानव मन के

अन्तर्द्वन्द्व का प्रदर्शन किया। मुस्लिम संस्कृति के प्रति क्षोभ का कुछ भी अंश उसमें न रहा।"[51]

मुगल कालीन कहानियाँ लिखने तक आचार्य जी के रक्त में आर्य समाजी प्रचारवाद था, इसलिये वह जहाँ भी सामाजिक सन्दर्भों में व्यंग्य दरकार होता, वे तुरन्त कहानी लिख डालते थे। ये समाज में फैली कुरीतियों तथा अंधविश्वासों को दूर करना चाहते थे, जिससे समाज में भाईचारे की प्रक्रिया को बल मिल सके। यह जहाँ कहीं भी अन्याय देखते तुरन्त बेझिझक इनकी वाणी आग उगलने लगती। जिसके परिणाम स्वरूप अनायास ही लोगों ने इन्हें 'लौह लेखनी का धनी' की उपाधि दे डाली।

इतिहास परक कहानियाँ :

शास्त्री जी ने इतिहास से सम्बन्धित कई कहानियाँ लिखीं हैं, क्योंकि इतिहास में भी इनकी रुचि प्रारम्भ से ही थी। इन्हें अपने अध्ययन के दौरान ही बौद्ध ग्रन्थों में अम्बपाली की एक छोटी सी चर्चा मिली, जब बुद्ध उसकी बाड़ी में ठहरे थे। तभी से इनकी इतिहास में रुचि बढ़ती गयी और इन्होंने अपनी पहली बौद्ध-कालीन कहानी 'अम्बपाली' लिखी, जो चाँद में सन् 1924-25 में छपी थी। इसके बाद तो अम्बपाली पर अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी गईं। आचार्य जी ने अम्बपाली के

चरित्र को लेकर अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' लिखी। इतिहास और साहित्य के सम्बन्ध में शास्त्री जी कहते हैं कि -"इतिहास का सत्य चिर सत्य है। इसका अभिप्राय है कि अमुक काल में ऐसा हुआ, परन्तु साहित्य का सत्य स्थिर सत्य है। उसका अभिप्राय यह है कि अमुक काल में ऐसा होता था। इसी पर से मैंने नौ निर्दिष्ट रसों के बाद एक अनिर्दिष्ट रस' इतिहास रस' की स्थापना की।"[52]

इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचन्द, निर्मल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा, राधिकारमण प्रसाद, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र इत्यादि कहानीकारों ने अपना तन, मन समर्पित कर दिया है तथा कहानी को उच्च शिखर तक पहुँचाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है, वहीं आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने भी अपना पूरा जीवन लेखन कार्य में ही व्यतीत कर दिया। इन्होंने समाज के हर वर्ग पर कहानियाँ लिखी हैं, जो समाज को एक नयी दिशा प्रदान करता है। इन्होंने बच्चों के लिये एक अलग ही कहानी संग्रह 'दस बाल कहानियाँ' लिख डाली जो बच्चों के सामाजिक विकास, नैतिक विकास तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं का मार्ग प्रशस्त करती है। इनकी बाल कहानियाँ सचित्र तथा आकर्षक एवं मनोरंजन परक भी हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने जिस प्रतिभा तथा अथक परिश्रम और लगन से इन बाल कहानियों में बच्चों के अन्दर उत्साह, साहस तथा कर्तव्य परायणता को जागृत करने का सफल प्रयास किया है वह शायद ही

अन्यत्र कहीं मिले। क्योंकि इन्होंने अपनी बाल कहानियों में शब्दों के साथ-साथ विभिन्न परिस्थितियों तथा घटनाओं को सचित्र दर्शाया भी है, जिससे बच्चों में पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और वे आसानी से समझ भी जाते हैं। यह प्रतिभा शास्त्री जी की हिन्दी कहानी में विशेष योगदान देती है, क्योंकि यही बच्चे कल बड़े होकर देश के विकास में सहायक सिद्ध होंगे तथा अपने अनुभवों की छाप आने वाले समाज के ऊपर छोड़ जायेंगे।

इस प्रकार हम यह निःसंदेह कह सकते हैं कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने हिन्दी साहित्य के प्रति एक विशाल बगीचे को तैयार किया है, जिससे आने वाली पीढ़ी दर पीढ़ी उस बगीचे के फल को ग्रहण करती रहेगी। इन्होंने सभी प्रकार की कहानियाँ ऐतिहासिक, सामाजिक, मुगल-कालीन, राजपूती-जीवन, चिकित्सा-शास्त्र इत्यादि सभी विषयों पर स्वच्छंदता पूर्वक लेखनी चलाई तथा हिन्दी कहानी के इतिहास में उच्च शिखर को प्राप्त किया, इसमें कोई संदेह नहीं है। एक लेखक जिसने 450 कहानियों के अतिरिक्त अन्य कई पुस्तकें, वैवाहिक जीवन तथा पति-पत्नी के आदर्श जीवन से सम्बन्धित लिखीं हैं वह कोई साधारण पुरुष नहीं हो सकता। वे अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। जिन्होंने अपने रचना संसार को इतना विस्तृत बनाया। यदि देखा जाए तो इतनी अधिक मात्रा में कहानियां (450) अभी तक बहुत कम ही लेखकों ने लिखी होगी, क्योंकि शास्त्री जी अपने जीवन की अन्तिम अवस्था तक लेखन कार्य

करते रहे। इन्होंने केवल कहानी ही नहीं अपितु लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। सन् 1961 ई. में आचार्य शास्त्री जी हिन्दी साहित्य की अनवरत सेवा करते हुए इस संसार से विदा हो गये। हिन्दी साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ -

1. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, बाहर भीतर (अपनी कहानियों के सम्बन्ध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 7
2. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दुखवा मैं कासे कहूँ (दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स - पृष्ठ 9
3. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-2
4. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-2
5. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-2
6. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-7
7. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-7
8. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-7
9. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-70

10. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-70
11. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-15
12. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-116
13. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-339-40
14. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-13-14
15. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-14-15
16. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-16
17. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-30
18. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-54-55
19. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-55

20. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-56
21. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-56-57
22. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-57
23. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-74
24. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-74
25. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-75
26. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-75
27. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963, दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-76
28. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियो के सम्बन्ध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 13
29. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियो के सम्बन्ध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ-13

30. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियो के सम्बन्ध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ-13
31. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियो के सम्बन्ध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ-13
32. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्म कहानी, 1963 दिल्ली, साहित्य समिति, पृष्ठ-117
33. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, 2016, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, पृष्ठ 243
34. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, 2016, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, पृष्ठ-243
35. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, 2016, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, पृष्ठ-243
36. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र (भूमिका से), 1996, दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ-6
37. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, सोना और खून, 1985 नई दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज, पृष्ठ-7
38. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर, 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 238
39. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दुखवा मैं कासे कहूं (प्रथम स.), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 16

40. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दुखवा मैं कासे कहूँ (सोने की पत्नी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 195
41. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, धरती और आसमान (अम्बपालिका), 2008, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 54
42. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, धरती और आसमान, 2008, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 268-69
43. डॉ. नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2012, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 463
44. डॉ. नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2012, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 566
45. मिश्र, डॉ. जयप्रकाश, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ-13
46. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, 2016, वारणसी वि. वि. प्रकाशन, पृष्ठ 369
47. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2012 इलाहाबाद, लोक-भारती प्रकाशन, पृष्ठ 371
48. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2012 इलाहाबाद, लोक-भारती प्रकाशन, पृष्ठ 380-81
49. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन' बाहर भीतर', 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 9

50. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन' बाहर भीतर', 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ - 10

51. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन' बाहर भीतर', 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ - 10-11

52. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन' बाहर भीतर', 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ - 12